उग्र-रचनावली—५

दोज़ख़की आग

और

अन्य अनेक आख्यायिकाएं

लेखक

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

प्रकाशक

बीसवीं सदी पुस्तकालय

३६, शंकरघोष लेन,

कलकत्ता

मूल्य डेढ़ रुपया

प्रथम संस्करण

प्रकाशक—
महादेव प्रसाद सेठ,
३६, शंकरघोष लेन,
कलकत्ता ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—
महादेव प्रसाद सेठ,
बालकृष्ण प्रेस,
कलकत्ता ।

शीर्षक-सूची

उग्र-लिखित

प्रसिद्ध पुस्तकें

चाकलेट १)

(दूसरा संस्करण)

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत ।।।)

(सचित्र, दूसरा संस्करण)

दिल्लीका दलाल १।।)

(बहु-चित्र, दूसरा संस्करण)

चिनगारियां १।।)

(सचित्र)

बीसवीं सदी पुस्तकालय

३६, शङ्करघोष लेन,

कलकत्ता ।



मेरी एक बीबी थी। गुलाबकी तरह ख़ूबसूरत, मोतीकी तरह आबदार, 'कोहेनूर' की तरह बेशकीमत, नेकीकी तरह नेक, चांदकी तरह सादी, लड़कपनकी हंसीकी तरह भोली और जानकी तरह प्यारी।

मेरे एक बच्चा था। चांदनी-सा गोरा, नये चांद-सा प्यारा, युवतीके कपोल-सा कोमल, प्रेम-सा सुन्दर, चुम्बन-सा मधुर, आशा-सा आकर्षक और प्रसन्न हंसी-सा सुखद।

दोज़खकी आग

मेरी एक मां थी। मसजिदकी तरह बूढ़ी, आमकी तरह पकी, दयाकी तरह उदार, दुआकी तरह मददगार, प्रकृतिकी तरह करुणामयी, खुदाकी तरह प्यारी और कुरानपाककी तरह पाक।

मेरी एक दर्ज़ीकी दुकान थी। वही मेरी ग़रीबीके बुढ़ापेकी लकड़ी थी, वही मेरे चार आदमियोंके परिवारके होटलकी मालकिन थी, वही मेरी रोज़ी थी, वही मेरी रोटी थी, वही मेरे उजड़े घरकी फूसकी टट्टी थी, वही मेरी झोपड़ीका चिराग थी। बीबोकी हँसी, बच्चेकी खुशी मांकी, दोआ, खुदाकी याद, सब कुछ वही थी। वही मेरी दुनिया थी।

मेरी एक बुरी आदत थी। हां हां, बुरी आदत था। अब तो जान गया हूं, अब तो मान रहा हूं, अब झूठ क्यों बोलूं? मेरी एक बुरी आदत थी। मैं खुदाको मानता था। खुदाको इन्सानसे बढ़कर जानता था। खुदाके लिये इन्सानकी हस्तीतक मिटा देनेका समर्थक था।

दोज़खकी आग

मेरी एक मित्र-मण्डली थी। उसमें एक-से-एक जाहिल और आवारे इन्सान थे। हरेक आदमी क़ुरानका हाफ़िज़ होनेका दावेदार था। हरेक आदमी पैगम्बर और खुदाका असली जानकार था। हरेक आदमी दुनियाकी डेढ़ अक़्लमेंसे, सवा अक़्लका खुद हक़दार था। हरेक आदमी पहुंचा हुआ था। हरएक आदमी मुसल्लम ईमान था।

मेरी एक बदक़िस्मती थी, उसने मुझे उस दिन जुमाकी नमाज़के बहाने मसजिदमें भेज दिया। भेज क्या दिया, घसीट ले गयी। उसीने नमाज़के वक्त एक हिन्दू जुलूसको मसजिदके सामने पहुंचाया, उसीने मुसलमानोंको बाजा रोकवानेपर उतारू कराया, उसीने हिन्दूओंको अपने हक़के नामपर अड़ाया, उसीने दोनों दलोंमें गुर्रागुर्रो कराया—डण्डे, तीर, तलवार बर्छे निकलवाये—और अन्तमें उसीने मुझ, इच्छाके विरुद्ध, मज़हबके नामपर, मैदानमें कुदा दिया। शहीद बना दिया।

मेरी करनीके लिये शैतानके खज़ानेमें एक इनाम

था। उसका नाम 'दोज़खकी आग' है। इस वक्त मैं उसी आगकी खूंख्वार लपटोंसे परेशान हूं। हाय हाय कर रहा हूं।

२

मरनेके बाद मालूम हुआ कि दुनिया वाले दूसरी दुनियाके बारेमें जो कुछ सोचते हैं सब ग़लत, सब फ़िज़ूल। सब सिर्फ़ ख़याली पुलाव होता है। वहां सुना था, दीनपर मरनेवालेको बहिश्त मिलती है, खुदा मिलता है, हूरें मिलती हैं और न जाने क्या-क्या स्वर्गकी विभूतियां प्राप्त होती हैं। मगर कहां? मेरी जान भी तो मज़हबके नामपर ही गयी। मैं भी तो दीन हीके लिये, खुदा हीके लिये, कुर्बान हुआ। फिर? मुझे वे चीज़े क्यों न मिलीं। कुछ नहीं। यह सब नासमझ इन्सानोंकी हिमाक़त है जो ज़मीनपर रहकर, आसमानकी बातें सोचा करते हैं। यहां देखनेसे मालूम हुआ कि दुनियाकी अक्ल आसमानी चीज़ोंके बारेमें सोच ही नहीं सकती। यहांके आश्चर्यके विषयमें

केवल यही कहा जा सकता है कि—'जो अक़्लमें न आये उसका ख़याल क्या है?'

ज़रा और विस्तारसे कहता हूं। लोग कहते हैं पैदा होने और मरनेमें बड़ी तकलीफ़ होती है। पैदा होनेमें तकलीफ़ हुई थी या नहीं, याद नहीं। मगर, मरनेमें तो वैसी कोई तकलीफ़ नहीं हुई। एक बार दोनों ओरसे ललकारी ललकारा हुआ। दूसरे क्षण डण्डे और तलवारें, ईंटे और बर्छे चलने लगे! संयोग-से किसी एक हिन्दूके हाथकी ईंट मेरी खोपड़ी पर सटीक बैठी। सर घूम गया। आंखों और मुंहसे ख़ूनकी पिचकारी छूटने लगी। मैं बेहोश हो ज़मीनपर ढेर हो गया। इसके बाद एक बार ज़रा-सा आहट मिली। मालूम हुआ कोई मुझे होशमें लानेकी चेष्टा कर रहा है। पर सब व्यर्थ। वह एक ही प्रहार मेरी ज़िन्दगीका तमाशा ख़त्म करनेके लिये काफ़ी था।

एकाएक बेहोशी इतनी बढ़ी कि मैं जाग उठा। अनुभव किया कि, दुनियाके ऊपर—किसी दूसरे लोककी ओर—उठाया जा रहा हूं। जिस समय मेरी

अनुभव करनेकी शक्ति लौटी उस समय मैं दुनियासे बहुत ऊपर—बहुत दूर था। इन्सानका प्यारा संसार वहाँसे धूलका घरौंदा मालूम पड़ता था; लड़कोंके खिलौना-सा दिखाई पड़ता था। वहाँसे सबसे पहले मेरी यही कोशिश हुई कि एक बार अपनी टूटी-फूटी झोपड़ीको खोजूं, एक बार बूढ़ी मांके मुहब्बतसे भरे चेहरेको तलाशूं, एक बार प्यारी बीबीके—दुःखोंसे भरी दुनियाको बहिश्त बनानेवाले—छोटेसे ख़ूबसूरत गुलाबी मुहँको ढूंढूं, एक बार अपने कलेजे-से प्यारे बच्चेकी शकलको उस घरौंदेके बाहर खोज निकालूं। मगर सारी कोशिशें बिलकुल बेकार हुईं। कोई न दिखाई पड़ा; कुछ भी न दिखाई पड़ा। अब दिल तड़पने लगा। ऐसी ख़ूबसूरत, ऐसी ईमान-दार, ऐसी भले मानस और ऐसी दिलदार बीबीको मैंने किस लिये छोड़ा? ख़याली मज़हबके लिये? शायरोंकी बहिश्त और दोज़खके लिये? आपसकी तक़रारके लिये? इन्सानके पागलपनके लिये? काफ़िरोंसे बदला लेने—उन्हें तंग करनेके लिये?

मसजिद्की शानके लिये ? गानेके लिये ? बजानेके लिये ? आखिर यह मैंने किया क्या और क्यों ?

देरतक दुनियाकी ओर देख भी न सका। मेरे पीछे कोई अज्ञात शक्ति अपना काम कर रही थी। मालूम पड़ता है, उसीका इशारा हुआ। बड़े ज़ोरोंसे—इतने ज़ोरसे कि कानके परदे झन्ना उठे—धड़ाकेकी आवाज़ हुई। सन्नसे किसी ज़ोरावर ताक़तने मेरी रूहको एक ओर खींचा। उफ़! ऐसा झटका दिया कि मेरा अङ्ग-अङ्ग भुरकुस हो गया। मैं कांप उठा। दुनियाके अभ्यासके मुताबिक मैंने आंखें मीच लीं। इस वक्त मेरे पास दुनियाकी तरह अङ्ग थे या नहीं, ठीक नहीं कह सकता। देखनेकी शक्ति थी, मगर; आंखोंका पता नहीं था। छूकर दूसरी चीजोंका अनुभव कर सकता था, मगर; अपने ही हाथ खुदा हो रहे थे—दिखाई नहीं पड़ते थे। यही हालत दूसरे अंगोंकी भी थी।

इस बार आखें खोलनेपर जो देखा—उफ़! रूह कांप उठी! होश उड़ गये! चारो ओर घना काला

अन्धकार! दुनियाका पता नहीं, आसमानका कोई चिन्ह नहीं, वायु नहीं, जल नहीं, सूर्य नहीं, चन्द्र नहीं, साथी नहीं, मित्र नहीं। कोई अपना नहीं, केवल—और केवल—घना काला भय-प्रद अन्धकार! दम घुट रहा था, बदन पसीनेमें 'शल' था, शरीरकी चमड़ी—मालूम पड़ता था—झुलसी जा रही थी, आँखोंकी ज्योति क्षण-क्षणपर क्षीण हुई जा रही थी। अन्धकारके परदेमें भयानक ज्वाला, भयानक ताप, भयानक दोज़ख़ था!

उफ़! उफ़!! उफ़!!!

३

मैं सिसक-सिसककर मर रहा था, मैं हिचक-हिचककर मर रहा था, मैं बिलख-बिलखकर मर रहा था। मैं गल-गलकर मर रहा था, मैं जल-जलकर मर रहा था, मैं मर-मरकर मर रहा था। बयान नहीं कर सकता उस तपिशका, बयान नहीं कर सकता उस रोमाञ्चकारी हृदयकी पीड़ाका, बयान नहीं कर

सकता उस रूहको हिला देनेवाली दोज़ख़की आगका !
ऐसी गर्मी, ऐसी पीड़ा, ऐसी प्रतारणा, ऐसा दाह, ऐसा दोज़ख़, ऐसा रौरव !

उफ़ ! उफ़ !! उफ़ !!!

पीड़ाओंसे व्यथित होकर मूर्छित हो जाता था। मगर, बेहोशीमें भी फ़ुर्सत नहीं। वही सपना, वही आग, वही छीछालेदर ! स्वप्नमें भी मूर्छित होनेका भ्रम होता था। इस प्रकार मेरी एक-एक बेहोशीमें हज़ार-हज़ार बेहोशियां छिपी रहती थीं। एक-एक मृत्युमें हज़ार-हज़ार मृत्युकी पीड़ा होती थी।

उस बार बेहोशीसे होशमें आनेपर देखा मेरी चारों ओरके अन्धकारमें कुछ प्रकाशका उदय हुआ। मनमें आशा चमक उठी—"परीक्षा समाप्त हो गई। अब बहिश्त चलना होगा। यही ज्योति ख़ुदाकी ज्योति है, हक़का जलवा है।" ध्यानसे देखनेसे पता चला कि वह ज्योति केवल ज्योति ही नहीं बल्कि ज्योतिर्मयी-अक्षर धारा थी। चमकीले हरूफ़ थे। आँखोंपर ज़रा ज़ोर डालकर देखा। लिखा था—

"दोज़खकी आग !"

ज्योहीं मैंने उक्त शब्दोंको अच्छी तरह देख लिया त्योंही—तुरन्त—अक्षर बदल गये। अब उन प्रकाश-पूर्ण अक्षरोंका रूप हो गया—

"भयानक—छाया-चित्र-नाटक !"

अरे, अरे ! मैं घबरा गया। यहां यह "सिनेमा" कैसा ? अक्षर और शब्द बराबर बदलने लगे—

"नाटककार... ...अज्ञान।"

"सूत्रधार......ईश्वर-कल्पना।"

"मुख्य नायक [हीरो, बहादुर] यार अली।"

मेरा नाम ! इस ड्रामाका 'बहादुर' मैं ? मैं अभी यह सोच ही रहा था कि अन्धकारके पर्देपरके अक्षर लुप्त हो गये। क्षण भरमें एक बार फिर मेरी आंखोंके सामने वही अन्धेरा आ गया, जिसके चरणकी धोवन अपने मुंहपर मलकर सावन भादोंका अन्धेरा अपना रूप चमकाता है। इसके बाद एक चलती-फिरती तस्वीर-सी परदेपर आयी।

ओ हो ! मैं फ़ौरन पहचान गया। वही जुमाकी

नमाज़का नज़ारा था। वही मौलवी, वही मुल्ले, वही बूढ़े, वही जवान, वही बदमाश, वही आवारे, वही गुण्डे, वही दीनदार, वही दिलके नामपर—खुदीके नामपर—खुदाको बदनाम करनेवाले, वही सायंकालका समय, वही हिन्दुओंका जुलूस, वही मुसलमानोंकी तकरार, वही बातोंका बतक्कड़, वही तनातनी, वही आकाशमें गर्दका छाना, वही आंधी, वही तूफ़ान, वही मैं [यार अली], वही धर्मके पागलोंका आग्रह, वही उत्तेजना, वही विक्षुब्ध समुद्रमें फांदना, वही वज्रपात, वही प्रलय !

उफ़ ! उफ़ !! उफ़ !!!

क्षण भरके अन्धकारके बाद दिखाई पड़ा—

"दूसरा भाग"

"धार्मिक उन्मादका फल"

इसके बाद तस्वीरोंका सिलसिला चला। मेरे शहरका विहगावलोकन, चारों ओर हड़ताल, चारों ओर भयानक स्यापा, चारों ओर शोक, घृणा, क्रोध

और अपमानकी लपटें अन्नके अभावमें भूखों मरते परिवार, बेटेके दुखमें रोती अनेक माताएं, पतिकी अकाल-मृत्युसे व्यथित अनेक अबलाएं, पिताके शोकसे सन्तप्त पुत्र और पुत्रके मरणसे मृतक पिता—चारों ओर शोक! चारों ओर हाय, हाय!

दूसरे भागके अन्तमें लिखा था—"जिस स्थानके लोग ईश्वर या खुदा, धर्म या मज़हब, पैग़म्बर या अवतारके नामपर हत्या, घृणा, रक्तपात, लूट, दाह और पापका प्रचार करते हैं, उस स्थानपर दोनों जहानके मालिक, सर्वेश्वर, परमेश्वरका कोप वज्रकी तरह टूटता है।

"उस स्थानके लोग रोते हैं और सिसकते हैं और क्षमा प्रार्थना करते हैं। मगर ईश्वर उन्हें क्षमा नहीं करता। वे घुल-घुल कर मरते हैं। मरनेपर भी उन्हें चैन नहीं लेने दिया जाता। वे दोज़खकी आगमें जलाये जाते हैं!"

४

इसके बाद मेरा घर दिखाई पड़ा। अरे! यह जला कैसे? मेरे घरको किसने ख़ाक कर डाला। समझ गया, समझ गया! मेरे घरके पीछे एक हिन्दू बनियेका मकान है। उसीके पापसे मेरा घर भी जला होगा। जौके साथ घुन भी पिस गया होगा।

मैंने उन तस्वीरोंमें स्पष्ट देखा, मेरी मां घरके आंगनमें बैठी थी। पहचानी नहीं जाती थी। आंखोंमें काले-काले गड्ढे पड़ गये थे। होंठ सूख गये थे। चेहरा पीला पड़ गया था। मांकी गोदमें मेरा गुलाब का फूल—मेरा लख़्ते-जिगर, मेरा लाल—था। उसकी भी बुरी हालत थी। जान पड़ता था हफ़्तोंसे बिना दाना-पानीके जी रहा था। उसके चेहरेपर हंसी नहीं, प्रसन्नता नहीं, जान नहीं। मां और प्यारे बेटेकी ऐसी हालत देखकर मेरी छाती जलने लगी।

इसके बाद बीबीपर नज़र पड़ी। वह मां और मेरे बच्चेसे थोड़ी दूर खड़ी किसी आदमीसे बातें कर

रही थी। उसके पास ही कुछ मज़दूर बांस और लकड़ी और खपड़े—शायद मेरे घरकी खपरैल ठीक करनेके लिये—इकट्ठा कर रहे थे।

मेरी बीबीके चेहरेपर अफ़सोस और फ़िक्रने डेरा डाल रखा था। उसकी आंखें कह रही थीं कि वह चिन्ताके नरकमें पड़ा है। उसका सूखा मुंह कह रहा था कि वह किसी भयानक ज्वालासे जल रही है। उस पुरुषको भी मैं पहचान गया। वही मेरी दुकानका मालिक था। उसीसे १०) महीने पर मैंने वह जगह ले रखी थी। वह मेरी बीबीके पास क्यों खड़ा है? उसका चाल-चलन तो ठीक नहीं। वह ऐसा आवारा-तबीयत है कि उसके रिश्तेदार भी उसे अपने घरमें नहीं घुसने देते। फिर? वह मेरी बीबीके सामने क्यों खड़ा है?

इसके बाद उसने मेरी बीबीसे कहा—"यह खरे सोनेकी तरह जवानी, यह बेदाग़ हीरेकी तरह हुस्न, योंही चौपट कर देना ठीक नहीं। यार अलीकी मुहब्बत, यार अलीकी इज्ज़त, उन्हींके साथ कब्रमें या

जन्नतमें गयी। अब तुमसे उससे कोई वास्ता नहीं..."

"चुप रहो," मेरी बीबीने कहा—"ऐसी बातें न कहो...।"

"मैं जो कहता हूं, बिलकुल ठीक कहता हूं। तुम कोई हिन्दू औरत नहीं हो, जो सात जनमों तक पतिके नामपर रंडापा खेओगी; हमारे यहां तलाक़ भी हैं, निकाह भी। अब तुम मेरे घरको रौशन करो।"

मेरी स्त्रीने कहा—"यह नहीं होनेका।"

"यही होगा," उसने कहा—"किसीका दामन न पकड़ोगी तो बच्चेको, बूढ़ीको और अपनेको खिला-ओगी क्या? मैं तो उजड्ड आदमी हूं। साफ़-साफ़ कहता हूं। अब वह ज़माना नहीं है कि कोई मज़हब या ग़रीबी या मिहरबानीके नामपर किसीके परि-वारको बैठाकर आराम देगा। यह दुनिया तो बाज़ार है। पहले कुछ दो, फिर लेनेके लिये हाथ पसारो।"

स्त्रीने कहा—"रहने दीजिये। मैं भीख मांगूंगी पर, आपकी ये बातें नहीं सुनूंगी। क्या यही सब सुनानेके लिये आप मेरी मदद करने आये हैं? क्या

२

इसीलिये मेरे घरका छप्पर ठीक कराया जा रहा है ?"

"भीख नहीं मिलेगी मेरी जान !" ज़रा उत्तेजित होकर उस नराधमने कहा—"खूबसूरत लोगोंको भीख भी मुफ़्तमें नहीं मिलती। तुम्हारी सास कहीं हाथ फैलाने लायक़ है ही नहीं, उसकी ज़ईफ़ी इस लायक़ नहीं है जो कहीं चल फिर सके। तुम्हारा लड़का अभी बिलकुल दो बरसका है। फिर ? तुम्हीं भीख मांगने जाओगी न ? तुम्हें कोई भी कुछ दे तो कहना। तुम्हारी जैसी भिखमंगनें पहले किसीका ईमान लेती हैं उसके बाद भीख। मेरी बात मान लो। मेरे घर चलो। छोड़ो इस झोपड़ीको—रानी बनो। छोड़ो इस रोनेको—गलेमें हाथ डालकर हंसो।"

मेरी स्त्री उस मर्दके सामनेसे आखें नीची किये हटने लगी। इसपर उसने एक रुपया ज़मीनपर फेंकते हुए कहा—

"फ़ाक़ा न करना; इस रुपयेका कुछ मंगाकर सब कोई खाना-पीना। मैं रातको—एक बार फिर—तुम्हारा निश्चय जाननेके लिये आऊंगा।"

दुकानका मालिक रहमत, जानेके पहले जान-बूझकर, औरोंकी आंख बचा, मेरी बीबीके गालपर एक हल्की चपत लगाकर कह गया—

"पगली न हो! जल्दी रास्तेपर आ जाओ!"

आगेकी तस्वीरें न देख सका! सर घूमने लगा। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों सैकड़ों सांप एक साथ मेरी छातीपर फन मार रहे हैं! मेरी आंखों के आगे उस कुत्तेने मेरी बीबीसे ऐसा सुलूक किया! मेरी आँखोंके सामने!!

उफ़! उफ़!! उफ़!!!

५

इस बार आँखें खुलनेपर देखा तस्वीरोंका सिल-सिला ज्यों-का-त्यों जारी था। मानों दोज़खमें सज़ा देनेकी यही तरकीब है। घुला-घुलाकर जान लेना, कोस-कोसकर मारना।

इस बार देखा। एक कमरा था। पलंग बिछा था। सामने कुर्सीपर बैठा वही, शैतानकी औलाद

रहमत, हुक्का पी रहा था। कमरेमें एक अच्छी बड़ी दीवालगीर जल रही थी ।जसके उजालेमें दो बड़ी-बड़ी आलमारियां चमक रही थीं।

कमरेका दरवाज़ा खुला और मेरी बीबी भीतर दाख़िल हुई। अब भी उसका मुंह सूखा था, अब भी आंखें धसी थीं, अब भी चेहरा उतरा था। मेरी बीबी के पीछे एक दूसरा आदमी था। शायद रहमतका नौकर था।

रहमतको देखकर मेरी बीबी घबरायी। पीछे फिरनेको तैयार हुई। मगर उधर दरवाज़ा बन्द कर नौकर रफूचक्कर हो गया था। रहमत मेरी बीबीकी निराशापर, हा हा हा हा कर, हंसने लगा।

"इसका क्या मतलब है ?"

मेरी बीबीने सवाल किया।

"इसका मतलब," रहमतने जवाब दिया—"यही है कि मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। यारअलीके सामने से ही मेरी तुम्हारे हुस्नपर नज़र है। तुम्हारे ही लिये मैंने अपनी दुकान उसे सस्ते भाड़ेमें दे रखी थी।

तुम मेरी जान हो, जाओगी कहां? यह मेरी क़िस्मत है जो वह नालायक़ तुम्हारी ऐसी परीको मेरे लिये छोड़कर दुनियासे उठ गया। खड़ी क्यों हो? आओ इधर बैठो।

स्त्रीने कहा—"मुझे जाने दो नहीं तो मैं हल्ला मचाकर तमाम मुहल्लेको इकट्ठा कर दूंगी। यह शराफ़त नहीं कमीनापन है। मेरा बच्चा भूखके मारे तड़प रहा है, मेरी सास मारे कमज़ोरीके मर रही है। चार फ़ाक़े हो चुके—आज लाचार होकर भीख मांगने निकली हूं। मुझे रोको मत, जाने दो।"

पुरुषने कहा—"तुम्हें जो ज़रूरत हो मुझसे लो। दूसरेसे मांगनेसे फ़ायदा? मैं जानता था कि तुम कभी-न-कभी घरके बाहर निकलोगी ही। इसीलिये मैंने एक नौकरको तुम्हारे दरवाज़ेपर तैनात कर दिया था। अब तुम्हें पा गया हूं। छोड़ूंगा नहीं। तुम मुझसे पल्ला छुड़ानेकी कोशिश ही क्यों करती हो? मैं यारअलीसे बदशक़ल नहीं, ग़रीब नहीं, किसी बातमें कम नहीं। तुम्हें तो ख़ुश होना

चाहिये। भीख मांगोगी तो एक दिन रण्डी भी बनना पड़ेगा। मेरे घर रहोगी तो इज़्ज़त ढकी रहेगी।"

जल्दीसे कुर्सी छोड़, मेरी बीबीके संभलनेसे पहले ही, उस दुष्टने उस हूरकी पुतलीको अपनी मज़बूत बाहोंमें कस लिया। इतने ज़ोरसे कस लिया कि वह हिल न सके, डुल न सके। और? और हमारी आंखोंके सामने, उसने सैकड़ों चुम्बनोंसे मेरी प्राणप्यारीके अधरों, कपोलों, आंखों और मस्तकको भर दिया। वह अवाक्-सी उसकी भुजाओंमें खड़ी ही रह गयी!

उसी समय कमरेमें रखी हुई दोनों आलमारियों के दरवाज़े खुले। दोनोंमेंसे दो-दो पुरुष निकलकर मेरी बीबी और हरामज़ादे रहमतकी ओर यह कहते हुए बढ़े कि—

"ओ हो हो! ग़ज़बकी रंडी है। अरे भाई रहमत! हम दोस्तोंका भी...... ।"

इसके बाद? इसके बाद—बहुतसी ऐसी तस्वीर दिखायी गयीं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिन्हें किताबमें, दिलमें, आंखोंमें जगह नहीं दी जा सकती। सबका अर्थ यही था कि पेटके कारण मेरी स्त्री वेश्या हो गयी। देखते-देखते उसकी आंखका पानी मर गया, दिलकी बहिश्त दोज़ख हो गयी, खुदाकी तस्वीर मिट्टीमें मिल गयी!

मैंने अपने दोस्तोंमेंसे बहुतोंको, मेरी बीबीके पाक-दामनको गन्दा करते अपनी इन्हीं आंखोंसे देखा!

उफ़! उफ़!! उफ़!!!

६

मैं तमककर, पावँसे कुचले गये सांपकी तरह; गरजकर, उबलते हुए तूफ़ानकी तरह; अपने आपेको भूलकर, पागलोंकी तरह—खड़ा हो गया। कौन है वह शैतान जो मेरी बीबीकी इज़्ज़त लूट रहा है? हट जाओ, कहता हूं मुझे छोड़ दो। मैं खून पीकर रहूंगा। यह वह बेइज़्ज़ती है जिसका बदला दुश्मनकी जानसे लिया जाता है। मैं दोस्तीका दम भरने वाले उन शैतानों पर बलाकी तरह, दोज़खकी तरह, खुदाके

गुस्सेकी तरह, आसमानपरसे टूटूंगा। उन्हें, उनकी हस्तीको, उनकी दुनियाको, चूर-चूरकर करके दम लूंगा। मुझे छोड़ दो—मुझे छोड़ दो! मेरे ख़ुदा! मेरे मालिक!

किसने मेरे मुंहपर ज़ोरसे एक थप्पड़ मारा? किसने अपने गुस्सेकी सांससे दोज़ख़की आगको छेड़ दिया? किसने मेरे कानमें क्रोधसे ललकार कर कहा—"ख़ुदाके नामपर शैतानको पूजनेवाले इन्सान! घबराता क्यों है? यही तेरी सज़ा है।" कौन मुझे चिढ़ा चिढ़ाकर हंस रहा है? कौन मेरे जलेपर नमक भुरभुरा रहा है? उफ़! इस मुल्कमें रहम नहीं है? ख़ुदा नहीं है? इन्साफ़ नहीं है?

यही शैतानका दोज़ख़ है?

वह देखो, वह देखो! फिर वही नज़ारा, फिर वही शैतान दोस्तोंका जलसा। मेरी बीबीके चादरके धब्बे! वह देखो, वह देखो! कैसी भयानक शक़लें हैं। किसीका सर कटा है, किसी की आंतें बाहर निकली हैं, किसीका धड़ नाच रहा है और सब-के-

सब मेरी लुटती हुई इज़्ज़तकी ओर इशारा कर कह रहे हैं—"और ख़ुदाका पाक नाम बदनाम करो! और शैतानके फेरमें पड़ो! हा हा हा हा! यह हम बेकसूरोंकी आहका नतीजा है, हमारे ठण्ढे ख़ूनका बदला है। जलो! तुम्हारे ऐसे शैतान हजारों बरस तक, इसी तरह, इसी दोज़ख़में जलाये जाते हैं।"

बर्दाश्त की हद हो गयी। इस होशसे बेहोशी ही अच्छी, इस जागनेसे सोना ही अच्छा—मरना ही भला। दोनों हाथोंसे ज़ोरसे मैंने अपना गला धर दबाया। गला हाथमें आया या नहीं—याद नहीं, पता नहीं। मगर दम घुटने लगा। जान निकलने लगी। मैं बेहोश होकर उसी काले अन्धकारमें, उसी दोज़ख़में, गिर पड़ा!

मेरे मालिक, मेरे ख़ुदा! कान पकड़ता हूं, तोबा करता हूं। जितना किया उससे कहीं ज़्यादा मुसीबत उठा चुका। अब सहा नहीं जाता। देखा नहीं जाता। मुझे इन शैतानोंसे और इनके दोज़ख़से बचाओ। रहम—मेरे अल्लाह! करम मेरे मालिक!!

महात्मा गान्धीके दिल्ली पहुंचने पर, कुछ और कहनेके पहले ही मौलाना मुहम्मद अलीने कहा—

"पहले आपको यहाँ के एक मुसलमान युवक मौलासे बातें करनी होंगी। पहले उससे शस्त्र रखवाना होगा। वह हम लोगोंकी बातें सुनता ही नहीं।"

महात्मा—"वह कहाँ है?"

मौलाना—"उसे हमने तीन दिनों से यहीं रोक

रखा है। उसका शहरमें जाना, हिन्दू-मुसलिम एका के लिये बहुत ही ख़तरनाक होता। क्योंकि, उसके सामने किसीकी कोई दलील काम ही नहीं देती।"

महात्मा—"क्यों? वह आप लोगों की भली सलाह क्यों नहीं मानते?"

मौलाना—"माननेके लिये तो वह तैयार है, पर, उसकी माँ नहीं मानने देती। वह कहती है कि—बेटा, तू जितने ही अधिक हिन्दुओंको मार सकेगा तेरी माँका दिल उतनाही अधिक प्रसन्न होगा और स्वर्गका द्वार उसके लिये उतना ही अधिक प्रशस्त होगा।"

महात्मा—(आश्चर्य से) "ऐसा! क्यों मौलाना साहब, उस युवक की माँ उसे हत्याके लिये उत्साहित करती है? स्त्री—देवी—राक्षसीका काम करती है! ऐसा क्यों? ज़रा उस युवकको बुलाइये तो।"

मौलाना साहबके इशारेसे एक मुसलमान सज्जन उस युवकको महात्माजीके सम्मुख लानेके लिये

१२५४

बाहर गये। थोड़ी ही देर बाद वह उन सज्जनके साथ उस कमरेमें आता दिखाई पड़ा।

युवककी लम्बाई पाँच फुटसे अधिक ही थी। वह तपाये हुए सोनेकी तरह सुन्दर तथा फ़ौलादकी तरह बलिष्ट जान पड़ता था। दूर या नज़दीक—कहीं से भी देखकर उसे कोई मुसलमान नहीं कह सकता। वह अग्नि की तरह तेजस्वी और बज्र की तरह कठोर दिखाई पड़ता था! देखनेमें वह दुष्ट या क्रूर भी नहीं जान पड़ता था! महात्माजी उस युवकको देखकर आश्चर्य में आ गये।

युवक महात्माजीको अभिवादन कर खड़ा हो गया।

"भाई मौला!" महात्माजीने युवकका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। पर युवक चुप रहा।

"भाई मौला, आप मुसलमान हैं?"

दबी ज़बानसे मौलाने कहा—"जी हाँ।"

महात्मा—"आपने कुरान शरीफ़ पढ़ा है?"

मौला—"जी हाँ।"

महात्मा—"फिर, भाई ; आपने अपने भाई पर ईमानके खिलाफ़ हथियार क्यों उठाया ? कुरान शरीफ़का अध्ययन तो मैंने भी किया है पर उसमें मुझे कहीं भी ऐसी शिक्षा न दिखाई पड़ी जिससे उत्तेजित होकर मनुष्य मनुष्यका ख़ून पीनेके लिये तैयार हो। आप हिन्दू मुसलिम एकाके विरोधी क्यों हैं?"

मौला—"महात्माजी, मैं मुसलमान ज़रूर हूं, पर, मेरी भक्ति इसलामसे ज़्यादा मेरी माँ पर है। मैं अपनी माँ की बातोंको कुरानशरीफ़की आयतोंसे अधिक पवित्र मानता हूं। उसी माँ की आज्ञासे मैं हिन्दू-जाति और हिन्दू-सभ्यताका विरोधी बना हूं। संसारकी कोई भी शक्ति मुझे मेरी माँ के प्रतिकूल नहीं ले जा सकती।"

युवक की बातोंसे सचाई टपक रही थी। इसे सत्य-व्रती महात्माने भली भाँति देखा। क्षण भर मौन रहनेके बाद उन्होंने युवकसे कहा—

"भाई, मैं आपकी माँके दर्शन करना चाहता

हूं। वह कहाँ मिलेंगी। मैं उनके क़दमों पर अपना सर रखकर अर्ज़ करूंगा कि वह आपको सत्य पथपर लायें। बताओ भाई, आपको माँ कहाँ हैं?"

युवकने कहा—"आप यहीं रहें; मैं अभी उन्हें बुला लाता हूं।"

२

उत्तेजित स्वरसे मौला की माँने कहा—

"हिन्दू महात्मा, तुम्हारे सामने अपने दिलकी चोट दिखानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। इसीलिये मैं यहाँ आयी भी हूं। नहीं तो, दुष्ट हिन्दुओंका मुँहतक देखना मेरे लिये पाप है। पहले तुम मेरी बातें सुन लो, फिर मुझसे कुछ कहना। मैं आजसे बीस वर्ष पहले हिन्दू-ललन थी......"

"हिन्दू-ललना थीं??"

एक साथही महात्मा गाँधी और मौलाना महम्मद अलीने उस स्त्रीसे पूछा।

"हाँ, मैं हिन्दू-ललना थी। उस समय मेरा नाम

'पार्वती' था और मैं स्थानीय नीलके कटरेके रईस, जो इस समय मर गया है, रामगोपालदास की पुत्र-बधू थी। मैं ईश्वरके घरसे ही अभागिनी बनाकर भेजी गयी हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं। अन्यथा मेरी इतनी दुर्दशाए न होतीं। पतिके घर आने पर महीने भरके भीतर ही मेरे जीवन-सर्वस्वका हैजेसे प्राणान्त होगया! उस समय मेरी अवस्था सोलह वर्षकी थी। मेरे यौवनका समुद्र जिस समय पूर्ण वेगसे लहरा रहा था उसी समय अपने पतिरूपी दिग्दर्शक यन्त्रके अनायास ही खो जानेसे मेरा मनः-पोत भ्रममें पड़ गया! मुझे अपनो चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ने लगा!!

"मेरे पिता लखपती थे और ससुर उनसे भी अधिक धनी। दुःख किसे कहते हैं, दुःख नामकी कोई चीज़ संसारमें होती भी है या नहीं, उस समय यह मुझे नहीं मालूम था। पर, पति के सुर-धाम जातेही मेरी आँखोंके सामने दुःखोंकी सेना खड़ी हो गयी। मेरी सन्दूकोंमें सैकड़ों, एक से एक, क़ीमती

साड़ियाँ तह की हुई रखी थीं, पर मुझे उनके स्पर्श करने तकका अधिकार नहीं था। क्योंकि मैं कुल-नाशिनी विधवा थी! पतिके मरनेके बाद ही मेरी इज़्ज़त घरकी मज़दूरनीसे भी कम हो गयी, क्योंकि मैं विधवा थी! रोज़की बातें जाने दीजिये त्योहारोंके दिन भी मुझे सबकी झिड़कियाँ सुननी पड़ती थीं, क्योंकि मैं विधवा थी! पतिके मरते ही मेरी इत्रोंकी शीशियाँ दासियोंमें बाँट दी गयीं, मेरा आईना तोड़ डाला गया, शृङ्गारदान भस्म कर दिया गया, क्योंकि मैं विधवा हो गयी थी।

"महात्मन्! मैं विधवा हो गयी तो इसमें मेरा क्या अपराध था? क्या मैंने वैधव्यको जान बूझकर बुलाया था? क्या मैंने ही अपने पतिकी हत्या की थी? क्या विधवाएँ दानवी हो जाती हैं, इनमें पशुता आ जाती है? यदि नहीं, तो, समाज विधवाओंके प्रति इतना क्रूर क्यों है? आप क्षमा करेंगे, जब कहती हूं तो सब कहूंगी।

"उस समय मैं जुहीकी मालाकी तरह सुन्दरी

और अपनी मस्तीमें आपही डूबी हुई थी। हृदयके कोने-कोनेमें यौवनका उन्माद भरा था! पर मुझे अन्तस्तलके उन्मादोंका किसी तपस्वीकी तरह दमन करना पड़ता था। तपस्वी तो अपनी तपस्याओंको किसी अद्वितीय दिव्य ज्योतिके चरणोंमें चढ़ाता है, पर मैं?—मेरी तपस्याएँ राक्षस समाजकी झूठी प्रसन्नताके चरणोंमें अर्पित होती थीं। तपस्वीको अपनी तपस्याकी सफलतासे आत्म-सन्तोषकी प्राप्ति होती है, पर मुझे?—मैं अपनी तपस्याओंके नाम आये दिन आठ आँसू रोती थी! जब-जब मेरी देवरानियाँ, शृङ्गार-पटार किये, माथेमें सिन्दूर लगाये, मुझे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती हुई मेरे सामनेसे निकल जाती थीं; तब तब मेरे दुर्भाग्यके कलेजे पर साँप लोट जाता था! मैं मारे अपमान और प्रतारणाके तलमला उठती थी! वसन्तका मन्द मलयानिल मेरी संयोगिन देवरानियोंको प्रेमका उपहार देता था और मुझे अग्निकी बौछार! चैत्रकी उज्ज्वल चन्द्र-करोज्ज्वला निशा, जिसके प्रत्येक क्षणमें वासना भरी मादकता मिली

रहती हैं, मेरी देवरानियोंकी छतपर अमृत बरसा जाती थी और मेरी एकान्त अन्धेरी कोठरीमें शोकका समुद्र लहरा जाती थी। सावन—पातकी सावन—आता था और संयोगिनियोंके हृदयमें बल भर जाता था। पर मैं? बादलोंको झूमते देखकर बिलखने लगती थी—अपनी फटी चटाईके अङ्कसे सटकर माता वसुन्धरासे प्रार्थना करती कि—माँ! क्षण भरके लिये अपनाहृदय खोलकर मुझे छिपा ले! अब नहीं सहा जाता!"

अभागिनी स्त्रीका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। इधर, महात्माजीकी आँखें भी तर थीं और मौलाना मोहम्मद अली तो प्रायः रो रहे थे।

३

गला साफ करनेके बाद मौलाकी मांने अपनी कथाका पुनः आरम्भ किया—

"मेरे तीन देवर थे, थे क्या दो तो अभीतक हैं।

जो समाज विधवाओंके लिये ऐसा भयंकर राक्षस है वही, विधवाओंके देवरोंके लिये कामदेवकी तरह उदार है। देवर (छोटा भाई) यदि बड़े भाईकी विधवा को, केवल कहनेके लिये छिपे तौरसे, अपनी अंक-शायिनी बना ले तो समाज उसे सह लेता है, पचा लेता है! मेरे बड़े देवरकी मुझ पर अच्छी दृष्टि न थी। वही एक ऐसा आदमी था जो कभी मुझसे दो-चार मीठी बातें करता। पहले तो मैं उसके उक्त व्यवहारको उसकी भलमनसाहत समझकर उसे श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगी, पर; धीरे-धीरे परदा हटा और उसका स्पष्ट चित्र मेरे सम्मुख आया। वह मेरे रूपका दास और मेरी जवानीका गुलाम था। वह मौक़ा पाते ही मुझे फुसलाता, तरह-तरहके प्रलोभन देता—सब्ज़ बाग़ दिखलाता था। मैं—प्रेमकी, प्रतिष्ठा की, सुखोंकी और वासनाओंकी भूखी मैं—उसके हाथों पर चढ़ गई! मैंने सोचा कि यही स्वर्ग है, मेरे सच्चे पति यही हैं, जो मर गया वह तो सामाजिक पति था। फिर क्या! मैं आंख मूंदकर वासनाकी नदीमें

—उस राक्षसके साथ—गोते लगाने लगी। मेरे हृदयका वर्षोंका छिपा उन्माद फूट निकला!

मगर यह क्या! मेरी आंखें उस दिन खुलीं जब मैंने उससे एकांतमें धीरेसे कहा—"प्यारे, मैं गर्भवती हो गयी हूं।"

मेरी बात सुनकर वह इस तरह चौंका मानो पांवके नीचे सांप पड़ गया हो। उसने कहा—

"यह तो बड़ा बुरा हुआ, तुम गर्भवती कैसे हो गयीं?"

मेरा मस्तक मारे लज्जाके नीचे झुक गया। भला उक्त प्रश्नका मेरे पास क्या उत्तर था? उसने फिर कहा—

"तुम्हें काशी जाना होगा।"

"क्यों?"

"गर्भपात करानेके लिये। यहांसे कुछ दिनों काशी-वास करनेके बहाने जाना और काम समाप्त हो जाने पर चली आना।"

मैंने आंखोंमें आंसू भर कर कहा—

"तो क्या तुम अपने बच्चेकी हत्या कराना चाहते हो ?"

उसने उत्तर दिया—"यहां इज़्ज़तकी पड़ी है और तुम बच्चेको लिये फिरती हो। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? तुम्हें कल ही काशी जाना होगा। सब लोगों को यह बात मालूम हो जायगी तो ठीक न होगा। हम जाति-च्युत कर दिये जायंगे।"

मैंने, अपने आँसुओंसे उस पशुका चरण धोते हुए कहा—

"प्यारे तुमने तो खुलेआम मुझे अपनी पत्नी बनानेका वचन दिया था। अब उसे पूरा कब करोगे ? इससे अच्छा अवसर कब मिलेगा ? हाथ जोड़ती हूँ, मेरे इस बच्चेको बचाओ, मैं भ्रूण-हत्या न होने दूँगी।"

उसने मुझे ठुकराते हुए उत्तर दिया—

'यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें अपनी स्त्री बनाकर अपनेको बदनाम नहीं कर सकता।'

मैंने क्रोधसे कहा—"तो क्या तुमने मेरा धर्म भ्रष्ट नहीं किया है? यह गर्भ तुम्हारा नहीं है?"

"बलासे! यह हमारा ही गर्भ है, पर मैं इसे अपना स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हूं। समाज मेरी बातों पर अधिक विश्वास करेगा। विधवाओं की दुश्चरित्रताको कौन नहीं जानता? यदि तुम सती होतीं तो पर पुरुषके साथ व्यभिचार करतीं ही नहीं। अब तुम्हारी भलाई काशी जाने ही में है?"

इतना कहकर वह राक्षस मेरे पाससे चला गया। मुझे चारो ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई पड़ने लगा। मैं मूर्छित होकर गिर पड़ी!

४

"उसी दिन मैंने अपने सब गहने एकत्र कर लिये और अगली रातको मैं उस घरसे बाहर निकल आयी। उस समय मेरे गर्भमें यही मौला था, तन पर एक मामूली धोती थी और हाथमें गहनोंका गठरी मेरे आगे-पीछे कोई नहीं था!!

"मुझे शहरका कोई भी रास्ता नहीं मालूम था। ईश्वरका नाम लेकर रास्ता ढूँढ़नेका भार मैं ने अपने कोमल पैरोंको दे दिया था। घंटा-भर चलनेके बाद मुझे पुलीसका एक सिपाही मिला। अन्धेरी रातमें अकेली जवान औरतको देखकर सिपाहीका चकराना ठीक ही था। उसने शासनके स्वरमें पूछा—'कहाँ जारही है?'

"मैं ठिठक कर खड़ी हो गयी। मुझे कोई उत्तर सूझता ही न था। इतनेमें पासकी मसजिदसे मुल्लाकी आवाज़ सुनायी पड़ी। मैंने बिना कुछ सोचे-विचारे ही पुलिस वालेको उत्तर दिया—'मसजिदके मुल्ला-साहबकी बेटी हूं। उन्हींके पास जा रही हूं।'

"फिर उसने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया। मैं काँपती हुई, दबे पाँव मसजिदकी चहार दीवारीके भीतर हो गयी!

* * *

"मुझे रोती देखकर वृद्ध मुल्लाने पूछा—'क्यों रोती है बेटी? तू कहाँसे आ रही है।' मैंने अपनी सारी

कहानी सुनाकर वृद्धसे कहा—'आप मुझे मुसलमान बना लें, पर मेरी इज़्ज़त और मेरे बच्चेकी रक्षा करें। आपही आजसे मेरे पिता हुए।'

"ईश्वर भला करे उस वृद्ध मुसलमान मुल्लाका, उसने बहुत ढाढ़स देकर मुझे अपने यहाँ रख लिया। उस वृद्धकी पवित्रता, मनुष्यता और ईमानदारी देखकर मैं दंग रह गयी! मुसलमानोंमें कोई भला आदमी होता ही नहीं, मेरा यह भ्रम उस मुल्लाके व्यवहारसे एकदम दूर हो गया। लोगोंके पूछने पर वह मुझे अपनी बेवा भतीजी बताकर परिचय देता था। उसने मुझे इस्लामकी दीक्षा देकर मेरा नाम 'जहूरन' रक्खा! उसीके घर मेरा बच्चा मौला पैदा हुआ, पाला-पोसा गया, पढ़ाया-लिखाया गया, और इस योग्य बनाया गया कि अपनी माँके हुक्मसे जघन्य हिन्दू-समाजमें खलबली पैदा कर सके!

"शुरूसे ही मैंने मौलाको हिन्दू-द्रोहकी शिक्षा दी है, शुरूसे ही मैंने उसे समझाया है कि एक-एक हिन्दूकी हत्यासे हज़ारों बहिश्तें मिलती हैं। दुनियामें

अगर कहीं सवाब है तो हिन्दुओंके मारनेमें, कहीं आदमीयत है तो हिन्दुओंकी हस्ती मिटानेमें! मेरा बच्चा जब कभी मुझसे प्यारसे पूछता कि—'माँ मेरे अब्बा, कहाँ हैं!'

"तब मैं मारे अपमान और शोकके व्यग्र होकर उत्तर देती कि—'अभागे, तेरी पैदाइशके पहले ही तेरे अब्बा बहिश्तको ओर चले गये।'

"भोला-भाला बच्चा पूछता—'वह कब आयेंगे माँ!'

"मैं उत्तर देती—जब तू मज़बूत होकर सौ-दो-सौ हिन्दुओंको मार गिरायेगा तभी तेरे अब्बा यहाँ आयेंगे। तभी तू उनकी गोदमें बैठकर खेल सकेगा।'

'मैं बराबर इस इन्तज़ारमें थी कि कब हिन्दू-मुसलमानोंमें दंगा हो और मैं अपने दिलका बुख़ार निकालूं। खुदाकी मिहरबानीसे वह दिन दिखाई पड़ा। दोज़ख़ी कुत्ते, अपने बहन बेटीका अपमान करने वाले हिन्दुओंके ख़िलाफ़ दिल्लीके मुसलमान खड़े हुए। मैंने मौलाको बुलाकर कहा—

"बेटा, अब वक्त आ गया है। देख, जबतक तेरा दम बाक़ी रहे तबतक इन काफ़िरोंको मौतकी सज़ा दे। और सुन, नीलके कटरेके बदमाश रईस देवनाथके सिरकी मुझे ज़रूरत । उसने मेरी जवानीके दिनोंमें मेरा अपमान किया था। उसका बदला तू न लेगा तो कौन लेगा ?

"मेरी बातें सुनकर मेरा मौला शेरकी तरह गरजता हुआ देवनाथका शिर लानेके लिये, मुसलमानोंके गरोहके साथ नीलके कटरेमें गया। देवनाथकी दूकान लूट ली गयी। और ; शामको मौला एक कटा सर लेकर मेरे पास आया ! वह उसी राक्षस, उसी नर-पशु, उसी नरकके कीड़ेका सर था जिसने मुझे अपना हिन्दू-धर्म छोड़कर (हिन्दुओंकी दृष्टिसे) म्लेच्छ-धर्म स्वीकार करनेके लिये विवश किया था ! मैंने उस पर हज़ार बार थूका, सैकड़ों ठोकरें लगायीं और अन्तमें कुत्तोंके सामने फेकवा दिया। उस दिन मेरी छाती ठंढी हुई, उस दिन मुझे सन्तोषके चिर-दुर्लभ दर्शन मिले। मगर, और—महात्मन् !—अभी

और। पतित हिन्दू-समाजका जितना ही भयङ्कर नाश होगा मुझे उतना ही सन्तोष होगा !”

५

सुना है; बड़े प्रयत्नसे उस अभागिनी हिन्दू-विधवा को समझा कर महात्मा गांधीने काशीवास करनेके लिए भेज दिया है, और; मौलाको साबरमती आश्रम ले गये हैं !


दोज़ख़!.....
नरक!!”

उनका सिंहासन किसी चीज़पर टिका तो ज़रूर था; पर, वह चीज़ पृथ्वी नहीं थी। सिंहासनकी चारों ओरका दृश्य स्वप्न-सा मनोहर और आश्चर्य-सा कुतूहलजनक था। ऊपर कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। नीचे भी कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। सामने, सिंहासनसे अन्दाजन ५०० गज़के फ़ासले पर, दो बड़े-बड़े फाटक दिखाई पड़ते थे।

एक फाटकपर विकट वदन, काले-काले हाथमें तपे हुए लाल लोहेका मोटा-सा डण्डा लिये दो भयंकर प्रहरा खड़े थे। उसके बड़े-बड़े दरवाज़े भी जलते हुए लोहेके बने मालूम पड़ते थे। उस फाटकके ऊपर अग्निके ज्वालामय अक्षरोंमें लिखा था—

"दोज़ख़! नरक!!"

दूसरा फाटक पहलेसे हज़ार गुना—लाख गुना—अधिक सुन्दर और आकर्षक दिखाई पड़ता था। वह पहले फाटकसे लम्बाई-चौड़ाईमें कुछ छोटा था। उसके द्वार-देश सोनेके न होते हुए भी प्रभा और सौन्दर्यसे भरे थे। पहला फाटाक विशालकाय किलेकी तरह भयानक और दूसरा यमुनाके एकान्त कूलपर बने देव-मन्दिरकी तरह सुन्दर था। उस फाटक के पास दो दिव्य देहधारी प्रहरी खड़े थे, जिनके हाथोंमें पारिजात प्रसूनसे भरे दो बड़े-बड़े थाल थे। उस फाटकपर बड़े-बड़े चन्द्रिकाधवल अक्षरोंमें लिखा था—

"स्वर्ग! बिहिश्त!!"

सिंहासनपर वे थे। वे, जिन्हें हिन्दू "नमोस्त्वन-

न्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे" कहकर पुकारते हैं। कोई ॐ कहता है, कोई ईश्वर। कोई बुद्ध कहता है, कोई तीर्थङ्कर। कोई राम, कोई श्याम। कोई उग्र कहता है और कोई शंकर।

सिंहासनपर वे ही थे जिनका जल्वा पवित्र काबामें दिखाई पड़ता है! जो मशरिक़में हैं और मग़रिबमें भी। जो मदीनेमें भी हैं और जुमा मसजिदमें भी और—और विश्वनाथ-मन्दिरमें भी। कहीं भी नहीं और सभी जगह हैं। प्रेमसे प्रगट होनेवाले भगवान हैं। जिनके बारेमें उर्दू के एक सूफ़ी शायरने कहा है—

दिलो दीदये अहले आलममें घर है,
तुम्हारे लिये हैं मकां कैसे कैसे।

जिनकी कल्पनाके आगे मुसलिम दुनिया दो-जानू होकर झुक पड़ती है, जिन्हें मुअज़्ज़न (अज़ां देनेवाला) अपनी ऊँची और मनुष्यताको मुग्ध कर देनेवाली आवाज़से पुकारता है—

"अल्लाहो अकबर! अल्लाहो अकबर!"

सिंहासनपर वे ही थे जिनकी तलाशमें लोहारका

लड़का ईसा—शहीद ईसा, महात्मा ईसा—अपने आपको भूल गया था! जिनकी दिव्य ज्योतिको, संसारकी ना-पाक और अन्धी आंखोंको दान देनेके अपराधमें—संसारके चन्द अन्धे सनातनियोंने—ईसाको क्रूसपर चढ़ाकर मार डालना चाहा था; पर, अपनी मूर्खतासे (या बुद्धिमानीसे ?) "क्रूस" को भी ईसा बना दिया। गिरजाघरके पीतलके घंटेका जड़ हृदय जिनको पुकारा करता है, जिन्हें अन्य जातियोंकी तरह ईसाई जाति, अपनी भाषामें, "ग्रेट," "ऑलमाइटी", "मरसिफुल" आदि नामोंसे पुकारती है। जो सम्राटोंके सम्राट्, लाटोंके लाट, सत्ताधारियोंके शासक और नाशकारियोंके नाशक हैं!

उस एक ही सिंहासनपर संसारके अनेक मतों, धर्म्मों, सम्प्रदायों और हृदयोंके एक सम्राट् विराजमान थे। वही ख़ुदा थे, वही गाड थे, वही ईश्वर थे!

२

मुलज़िम

अदालतके सामने, ख़ुदाके सामने, दो मुलज़िम पेश किये गये। मुलज़िमोंका चेहरा सूखा हुआ था, उनके पैरोंमें लोहेकी मोटी-मोटी, चमड़ा न जलाकर भी भयानक कष्ट देनेवाली, दोज़ख़ी बेड़ियां पड़ी थीं। मुलज़िमोंके दाहने-बाएं और पीछे, डरावनी सुरत-वाले, दूत या सिपाही खड़े थे। उनके हाथोंमें भी जलते लोहेके भयानक डण्डे थे।

ख़ुदाने एक मुलज़िमकी ओर इशारा कर कहा—

"ऐ दुनियाके बन्दे! ऐ इन्सान! तेरे ऊपर जो इलज़ाम लगाया गया है उसे तूने सुन लिया? अब तुझे अपने बारेमें जो कुछ कहना हो कह।"

"ख़ुदा! परवरदिगार!" एक मुलज़िम बोला "आपकी मर्ज़ीके मुआफ़िक़ मेरी पैदायश कलकत्तामें हुई थी। दुनियाके उसी बड़े शहरमें मेरी ज़िन्दगीके तीस साल बसर हुए हैं। मेरा दुनियावी नाम नज़र

अहमद है। चितपुर रोडपर मेरी एक छोटी-सी जूतेकी दूकान है। अभी चन्द दिनोंकी बात है, उस शहरमें हिन्दू-मुसलमानोंमें दंगा हो गया था। दंगेकी वजह थी हिन्दुओंकी शैतानी। उन्होंने दुआ मांगनेके वक्त हुज़ूरके घर मसजिदके सामने बाजे बजाकर बन्दोंके ख़ुदाकी याद करनेमें अड़ंगा लगाया था। काफ़िरोंको इसी बातकी सज़ा देनेके लिये, वहांके मुसलमानोंने दंगा किया—हिन्दुओंको मारा—लूटा भी! मैं भी उन्हीं ख़ुदा-परस्त मुसलमानोंमेंसे एक हूं"

अदालत—"तुम्हें कैसे मालूम कि ख़ुदा गाना-बजाना नापसन्द करता है?"

मुलज़िम—"बड़े-बड़े मुल्लाओं, अच्छे-अच्छे तेरे आशिक़ोंका यही कहना है। दुनियामें तू तो कभी दिखलाई नहीं पड़ता, ऐसी हालतमें सिवा तेरे बन्दोंके और किसकी बातपर एतबार लाया जाय?"

अदालत—"तुमने सुना नहीं था कि, ख़ुदा हर-एक दिलमें रहता है? हर-एक दिल ख़ुदा है और हो सकता है। तुमने, अपनी ही तरहकी सूरतवाले,

दूसरे मज़हब वालोंपर, हाथ उठानेके पहले कभी अपने दिलमें ख़ुदाकी खोज की थी ?"

मुलज़िम (सिटपिटाकर)—"नहीं। मैं जबसे पैदा हुआ तभीसे यह सुन रहा था कि हिन्दू बदज़ात और नापाक काफ़िर होते हैं जिन्हें मारनेसे, सतानेसे, जन्नत मिलती है, हूरें मिलती हैं, ख़ुदा ख़ुश होता है। मैंने जो कुछ भी किया है, तेरी ख़ुशीके लिये, तेरी मिहरबानीके लिये। दंगा शुरू होते ही मैंने अपनी दूकान बन्द कर दी और एक लंबा छुरा लेकर काफ़िरोंकी तलाशमें निकल पड़ा। अगर मैं भूलता नहीं हूं तो मेरे हाथों दो हिन्दुओंकी जानें गयीं, कई घायल हुए। मगर, अफ़सोस, मैं ख़ुद भी काम आ गया। इस बदज़ात हिन्दूने, जो मेरी बग़लमें खड़ा है, मेरे सरपर एक डण्डा ऐसा मारा कि मैं उस दुनियासे लाचार होकर भाग खड़ा हुआ, मर गया! मगर, बन्दापरवर; यहां मेरे साथ यह कैसा सलूक किया जा रहा है? मुझे जन्नत मिलनी चाहिये थी, ये दह-

कती हुई लोहेकी बेड़ियाँ नहीं। हूरोंकी जगहपर मेरे पीछे दोज़ख़ी फ़रिश्ते क्यों लगे हैं ?

अदालत—"कुछ और कहना है या ख़त्म कर चुके ?"

मुलज़िम—"बस, मेरे मालिक ! मुझे जो कुछ अर्ज़ करनी थी मैंने कर दी। मिहरबानी कर मेरी बेड़ियां कटवा दीजिये। इनको तकलीफ़से मैं जला जा रहा हूं ! उफ़ !!"

३

दूसरा बन्दी

दूसरा बन्दी हिन्दू था। उसने उन्हीं ख़ुदा या भगवानके सामने अपना बयान इस प्रकार दिया—

"दीनानाथ ! मैं हिन्दू हूं। मैं भी कलकत्ताके दंगेमें मारा जाकर आपके सामने आया हूं। मेरा नाम रम्मूसिंह, जाति क्षत्रिय और उम्र पैंतीस साल है। केवल बाजेके बहानेपर मुसलमान हिन्दुओंको

पीट रहे हैं और हिन्दू-मन्दिरोंका जलाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देनेकी धुनमें लगे हैं, यह सुनकर मेरे मनमें बैठा हुआ 'हिन्दू' व्यग्र हो उठा। मैं हाथमें डण्डा लेकर अपने कुछ दूसरे साथियोंके साथ, मुसलमानोंसे बदला लेनेके लिये, मन्दिरके बदले मसजिद जलाने, हिन्दू-जानके बदले मुसलमान-जान लेनेके लिये, घरसे बाहर निकल पड़ा। उस वक्त हमारे सामने जो कोई भी मुसलमानकी तरह आया बुरी तरह मारा गया।"

अदालत—"सज़ा देनेके पूर्व तुमलोग अपराधका निर्णय कर लेते थे या बिना निर्णय किये ही जो मिल जाता उसीपर हाथ छोड़ देते थे?"

हिन्दू—"प्रभो! जब मुसलमान कसूरवार और बे-कसूर दोनोंको मारते थे तब हमीं निर्णयके फेरमें क्यों पड़ते? हमने भी जिसे सामने पाया उसीको मारा। हमने भी लूटा, आग लगायी, छुरे और डण्डे चलाये।"

अदालत—"बे-कसूरोंको सतानेसे भगवान् रुष्ट

होते हैं, बे-कसूरोंके हृदयकी पीड़ा ईश्वरके हृदयकी पीड़ा होती है, यह तुमने नहीं सुना था ?"

हिन्दू—"सुना तो था; पर, मुसलमान जो सभी तरहके हिन्दुओंको मार रहे थे। लड़ाई हिन्दू-मुसलमानकी थी। फिर हम लोग बे-कसूरको व्यर्थमें क्यों ढूंढ़ते ? लड़ाई तो एक मतकी दूसरे मतसे थी। ऐसे युद्धोंमें मत विशेषका माननेवाला होनेसे ही आदमी अपराधी हो जाता है। हमारी दुनियामें तो ऐसा ही नियम देखा जाता है, भगवन् !"

अदालत—"दुनिया और स्वर्गमें, दोनों जगहोंके नियमोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। ख़ैर।"

हिन्दू—"यह दूसरा क़ैदी, जो अपनेको नज़र अहमद नामसे बताता है, स्वयं कह चुका है कि वह ख़ुद भी हत्यारा है। मैंने इसे अपनी आंखोंसे, एक हिन्दूके पेटमें छुरा भोंकते देख, इसपर वार किया था। एक ही डण्डेमें तो इसका वारा-न्यारा हो गया था। मगर, उसी वक्त हमारे पीछेसे सैकड़ों मुसलमान गुण्डे टूट पड़े। हिन्दू दल बिखर गया, और मैं

मारा गया। मैं तो युद्धमें मारा गया हूं स्वामिन्! मुझे मुक्ति मिलनी चाहिये—वीर-गति मिलनी चाहिये। किस अपराधसे मेरे पैरोंमें ये लाल-लाल जलती हुई लोहेकी बेड़ियां डाली गई हैं? धर्मके काममें जान देनेपर भी आपकी अदालतमें इतनी छीछालेदर होती है, यह मुझे वहांपर नहीं मालूम था!"

* * * *

इसके बाद पापने दोनोंके विरुद्ध गवाही देते हुए कहा—

"ये दोनों-के-दोनों ही पापी हैं। मैं इन्हें ख़ूब पहचानता हूं। संसारमें इन्होंने प्रेमसे बढ़कर द्वेषको माना, सत्यसे बढ़कर असत्यको समझा और हमारे विद्वान् दोस्त धर्मसे बढ़कर मुझे [पापको] आदर दिया! ये ईश्वर या ख़ुदाको जानते ही नहीं और न तो कभी उसे समझनेकी कोशिश ही करते हैं। ये भगवानसे बढ़कर अपनेको समझते हैं और अपनी ही प्रसन्नताको ईश्वरकी प्रसन्नता मान दुनियामें हत्या, विद्वेष और रक्त-पातका प्रचार करते हैं।"

धर्मने भी आंखोंमें आंसू भरकर पापके बयानका समर्थन किया मगर इन शब्दोंके साथ—

"प्रभो! इसमें इनका क्या अपराध है? तुम मनुष्योंको इतना दुर्बल बनाते ही क्यों हो? संसारको हत्या, रक्त-पात, हाहाकार और विद्वेषका दान तुमने नहीं तो और किसने दिया है? ये अपराधी हैं ज़रूर, मगर ऐसे अपराधियोंसे संसार भरा हुआ है।"

अन्तमें सरकारी वकील "मनुष्यत्व" महोदयने अपने लम्बे-चौड़े भाषण द्वारा यह साबित किया कि—"दोनों ही मनुष्यताकी दृष्टिसे भयानक अपराधी हैं। दोनोंने सर्वेश्वर, सम्राटोंके सम्राट, ईश्वरके नाम पर संसारमें विद्वेष और युद्ध फैलाया है। मनुष्योंकी हत्या कर दोनोंने ही सम्राटकी परम पवित्र थातीको नुकसान पहुंचाया है। दोनों ही गुमराह हैं, भयानक अपराधी हैं!"

४

फ़ैसला

भगवान् या ख़ुदाने अपने पवित्र मुखसे दोनों मुलज़िमोंके मुक़दमेका फ़ैसला इस प्रकार सुनाया—

'ये दोनों भयानक हत्याके अपराधी हैं। स्वर्ग-लोककी इस बड़ी अदालतके सामने कोई झूठ बोल ही नहीं सकता। अस्तु, कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि मुलज़िमोंका बयान अ-सत्य माना जाय।

"मनुष्यको आत्म-संरक्षणके सिवा मनुष्यकी हत्या करनेका कोई भी हक नहीं। मनुष्य-हत्यासे बढ़कर कोई भी भयानक पाप नहीं।

"ये दोनों 'धर्म' और 'ईश्वर' के नामपर लड़े हैं। जो धर्म दूसरे धर्मवालोंकी हत्याकी आज्ञा दे, वह धर्म हो ही नहीं सकता। उस धर्मसे सांसारिक अ-धर्म कहीं श्रेष्ठ होता है; क्योंकि अ-धर्म स्पष्ट होता है। वैसा धर्म तो—धर्मके पर्देमें—अधर्म होता है। वह ईश्वर राक्षस है, वह ख़ुदा शैतान है, जिसके नाम पर

हिंसाकी अग्निमें स्नेह दान किया जाय। वह मनुष्य भयानक पापी है जो ईश्वरके नामपर संसारमें अपने हृदयकी विद्वेषाग्नि फैलावे।

"मनुष्यका काम हत्या करना नहीं प्यार करना है। जिसके हृदयमें प्यार करनेकी शक्ति नहीं वह मनुष्य नहीं। हत्या शैतानका नाम है और प्यार ख़ुदाका। हत्यारे ख़ुदा-परस्त नहीं, शैतान-परस्त हैं। वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान अथवा ईसाई। ईश्वरके नामपर आजतक संसारमें जितने मत या धर्म बने हैं वे सब मनुष्यकी कल्पनाके चित्र हैं। मनुष्य हज़ार सम्पूर्ण हो जानेपर भी अपूर्ण ही है। भला अपूर्ण सम्पूर्णको क्या सोचेगा, क्या समझेगा? अस्तु, संसारके सभी धर्म झूठे हैं, सभी सच्चे हैं। किसीपर किसीको लाञ्छना लगानेका या बुरा कहनेका अधिकार नहीं। मसजिद, मन्दिर, गिरजा, आदि मनुष्यकी कल्पना हैं और मनुष्य ईश्वरकी कल्पना है। क्षुद्र मनुष्यकी कल्पना [मसजिद या मन्दिर] के लिये ईश्वरकी कल्पना मनुष्योंका नाश करना

इतना बड़ा पाप है जिसका कोई पर्याप्त दण्ड ही नहीं हो सकता।

"अस्तु इस भयानक पापके पापी इन दोनों—मनुष्यका नाम बदनाम करनेवाले—नर-पशुओंके लिये एक ही सज़ा है ; और वह है—

'दोज़ख़ ! नरक !!'

"इन्हें जबतक ज़मीनकी हस्ती है तब तकके लिये भयानक नरकमें बन्द किया जाय। ज़रूरत पड़नेपर ये कुष्ठका कष्ट भोगने, जलमें डूबने, भूखों मरने, आगमें जलने, वैधव्य दुःख भोगने और इसी तरहकी सासतें सहनेके लिये मर्त्यलोकमें भी भेजे जायँगे, क्योंकि नरक और स्वर्गकी कुछ शाखाएँ मर्त्यलोकमें भी हैं !"

* * * *

जिस समय वे दोनों (हिन्दू मुसलमान) नारकीय, नरककी ओर—भयानक दूतोंके साथ—जा रहे थे ; उसी समय, स्वर्गके द्वारकी ओर एक जलूस जा रहा था जिसमें देवताओंके बीचमें एक तेजस्वी नवयुवक दूल्हेकी तरह सजा हुआ जा रहा था। दोनोंने दूतोंसे

दरियाफ़्त किया—"यह किसका जलूस है भाई?"

"चुप रहो!" दूतोंने डाँटकर जवाब दिया। "तुम्हारे ऐसे पापियोंको इनकी ओर देखनेका भी अधिकार नहीं है। ये स्वर्गीय प्राणी हैं। जलूस एक हिन्दू नवयुवकका है जिसकी जान कलकत्तेके दंगेमें एक मुसलमानकी रक्षा करनेमें गयी है!"


आँखोंमें आँसू

बाबू आनन्दशंकरकी विभूति देखकर कानपुर विस्मित था, वहांका व्यापारिक जगत स्तब्ध। आनन्दशंकरके पिता श्री रामशंकरजी जब मरने लगे तब उनके पास रुपये थे ज़रूर—पर, उनकी संख्या कई दर्जन सौसे अधिक न थी। रामशंकरजी सद्‌कुलकी सन्तान थे। उनके ख़ानदानका नाम, सदियोंसे, धनिकोंमें लिया जाता था। स्वयं उनके पिता लख-पती थे। पर रामशंकर धनोपार्जिनी शक्तिसे वंचित

थे। उन्हें रुपये फूंकनेमें जो सुख मिलता था—वह संचित करनेमें नहीं। यही कारण था जो वह अपने पुत्र आनन्दशंकरके भविष्यके लिये कुछ छोड़ न सके।

आनन्दशंकर कर्मण्य थे, परिश्रमी थे, संयमी थे और थे संग्रही। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उत्साह उनमें कूट-कूट कर भरा था। थकना तो वे जानते ही न थे। इन्हीं सद्गुणोंकी कृपासे, पिताकी मृत्युके दस वर्ष बाद ही, उन्होंने अपने कुलकी प्रतिष्ठा, सम्पत्ति ज्यों-की-त्यों—बल्कि पहलेसे भी अधिक—कर ली। दस वर्षकी भीषण तपस्या, अनवरत श्रमके बाद सांसारिक विभूति उनके ऊपर प्रसन्न हुई। उनके मित्रोंके शब्दोंमें—"लक्ष्मी पैर तोड़कर उनके घरमें बैठ गयीं।"

ज़रूरतसे ज़्यादा, आकांक्षासे अधिक, धन हो जानेपर आनन्दशङ्करके मनने उनकी हृदय-वीणाका एक दूसरा ही तार छेड़ा।—"ठहरो भी। जरा दम ले लो!—सोच लो। केवल धन ही सुख नहीं है। मोटर है, गाड़ी है, बागीचे हैं, नौकर-चाकर हैं, मान-

प्रतिष्ठा है, चमकता हुआ व्यापार है, दमकता हुआ भविष्य है—पर, सुनो तो! तुम्हारे जीवनकी आधीसे अधिक यात्रा समाप्त हो चुकी है। कुछ ही दिनोंके बाद दूसरी दुनियाकी ओर जाना होगा। ज़रूर, सभी जाते हैं—सभी अनित्य हैं...।" अन्तरात्माकी इस छेड़से आनन्दशङ्कर चमक उठे! यह गाढ़ी कमाई, यह ख़ूनका पसीना, यह भयानक तपस्याका अमृत-फल मूर्ख संसारके हाथोंमें, योंही—मुफ़्तमें ही—छोड़कर चला जाना होगा। हमारा 'अपना' कोई भी नहीं!... भगवन्! भगवन्!

मनुष्यकी विवशता ही 'भगवान्' की जननी है। मनुष्यत्वका छोर, ईश्वरत्वका ओर—एक दूसरेसे भोर और प्रभातकी तरह मिले हैं।

२

अबतक आनन्दशङ्करके हृदय-प्रदेशमें जो स्थान धनके लिये था उसपर अब पुत्र-कामनाका अधिकार हो गया। अबतक जो व्यक्ति ईश्वरकी उपेक्षा करता

था वही, अब उस परम कृपालुकी कृपाकी अपेक्षा करने लगा। बही खातोंका कीड़ा व्यापारी, दुर्गा-सप्तशती, विष्णुसहस्रनाम और महिम्न स्तोत्रका प्रेमी—भक्त बन गया !

उधर आनन्दशङ्करकी स्त्री प्रसन्नवदना, स्वच्छमना सोनारानी, पतिसे सहस्र-गुना अधिक उत्साहसे—भगवान्के चरणोंमें—अपनी पुत्र-कामना व्यक्त करने लगीं। इर्द-गिर्द, आस-पास, मुहल्ले-टोलेमें ऐसा कोई भी मन्दभागी देवता न बचा होगा जिसके मन्दिरमें पुत्र-कामनाकी भूखी माताके चरण न गये हों। सोना-रानीके स्मृति-राज्यमें ऐसी कोई देवी या देवता न था जिसके काल्पनिक दर्बारमें जननीकी 'आकांक्षा' न पहुंची हो। दिनका आधा भाग सूर्यपुराण, दानलीला और रामायणके पाठमें—उपवासमें बीतता था। हफ़्तेके आधे दिन व्रतमें जाते थे।

आनन्दशङ्कर और सोनारानीकी तपस्या—या एकान्त चिन्तन—का फल शीघ्र ही मिला। पुत्र-रत्नने, उनके अन्धेरे घरको प्रकाशित किया।

धर्मप्राण हिन्दुओंने इसे ईश्वर हीका प्रसाद समझ, बच्चेका नाम 'जगदीश प्रसाद' रखा।

जिस समय जगदीशकी अवस्था तीन दिनोंकी थी उस समय उसके पिताने चालीस वर्ष देख लिये थे—और माताने तीस और पांच वर्ष।

३

तेरह वर्ष बाद।

"अभी जल्दी क्या है?"

"अपने सिरपरके चांदीके तारोंको देखो, मेरे मुखपरकी वृद्ध-रेखाओंको देखो। हम लोग अब जल्द ही चलेंगे। क्या ठिकाना है?"

"नहीं, जल्दी क्यों चलेंगे? अभी मैं पचास वर्षसे अधिकका नहीं मालूम पड़ता। बच्चेको थोड़ा और पढ़ लेने दो। सयाना हो लेने दो। व्याह होते कितनी देर लगती है?"

"नहीं—।"

"सुनो भी—।"

"मैं जो कहता हूं। उसे थोड़ा और होशियार हो जाने दो। कच्ची उमरमें व्याह करना ठीक नहीं।"

"जब तुम्हारा व्याह हुआ था तब तुम कितने पक्के थे? अपने मुहल्लेके गोविन्दप्रसादके पुत्रका व्याह हो गया। वह तो दस ही वर्षका है। सभी अपने लड़केका व्याह इस उम्रमें कर देते हैं।"

आनन्दशङ्कर चुप रहे। सोनारानी पतिके और भी अधिक निकट पहुंच कर और उनका दाहिना हाथ अपने हाथमें लेकर कहने लगीं—

"मेरी बात मान लो। बड़ी साध है। एक बार बच्चेको मौर पहनाकर चूमूंगी। उसकी बलाएं लूंगी। जीवन सफल करूंगी।"

"बुरा क्या है। लड़केको नौकरी तो करनी नहीं है। पैसा तो खोजना नहीं है। व्याह होनेके बाद भी पढ़ता रहेगा। सचमुच हम लोगोंका क्या ठिकाना है? आज हैं कल न होंगे—तो?"

अनन्दशङ्कर मन ही मन पिघल गये।

"अच्छी बात है। अच्छी बात है...मगर।"

"अगर मगर नहीं। अब 'हां' कह चुके। बात पक्की हो गयी। इसी साल, जल्दसे जल्द। मैं तैयारीमें लग जाती हूं।"

४

अपने कुल पुरोहित पण्डित रामचन्द्र दूबेको बुलाकर बाबू आनन्दशङ्करने बड़ी विनयसे कहा—

"आप देवता हैं। आपहीके आशीर्वादसे हम सुखी हैं। आपहीकी प्रसन्नतासे हम प्रयागके बाबू हरप्रसाद जीकी पुत्रीसे अपने बच्चेकी शादी करनेको तैयार हुए हैं। आप जानते हैं, मुझे दहेजमें रुपये नहीं चाहिये। मुझे कमी किस बातकी है? फिर, मैं जानता हूं बाबू हरप्रसादकी अवस्था अच्छी नहीं। वे प्रयागके बिगड़े सफ़ेद-पोशोंमें हैं। वे कुलीन हैं—यही बहुत है। गौरव कुलका है। धन तो हाथका मैल है।"

पण्डितजीने दुपट्टा संभालते हुए कहा—

"ठीक कहते हो भैया। तुम उदार हो, राजा हो। ईश्वर तुम्हें चिरायु करें।"

"सब आपकी कृपा है।" नम्रतासे आनन्दशङ्करने कहा "अब आप एक कष्ट कीजिये। यह काम आपहीसे हो सकता है। कृपाकर एक बार प्रयाग जाइये। मैंने हरप्रसादजीसे इशारतन कह भी दिया है। आपको एक बार कन्या देख आना होगा। यह ऐसा सौदा है जिसे खूब देख-भाल कर लेना ही ठीक होता है।"

पण्डितजीको राज़ी होनेमें विलम्ब न लगा। आनन्दशङ्कर और पण्डित रामचन्द्र दूबेके ख़ानदानोंका सम्बन्ध पुराना था। पण्डितजीने यजमानको शत-शत आशीर्वाद देकर मार्ग-व्यय आदिके लिये रुपये लिये और दूसरे ही दिन इलाहाबाद जा धमके।

*   *   *   *

बाबू हरप्रसादके दो लड़कियाँ थीं—सुरूपा और हीरा। सुरूपाकी अवस्था हमारे समाजकी व्याह करनेकी अवस्थाको 'डांक' गयी थी। वह पन्द्रह वर्षकी थी—हीरा बारह की। हरप्रसादजीके दो लड़के स्कूल और कालेजमें पढ़ते थे, वे भी व्याहने योग्य हो

गये थे; पर, एक तो उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी न होनेके कारण लड़के देखने वाले आते ही कम थे, दूसरे अभी दो-दो लड़कियां व्याहनेको बैठी थीं। इन्हीं कारणोंसे उनकी शादी नहीं हुई थी। लड़कियोंकी व्याह-चिन्तासे हरप्रसादजीको नींद नहीं आती थी, भोजन नहीं रुचता था, संसार भयानक मालूम पड़ता था।

आनन्दशङ्करके पुत्रसे व्याहकी बात चलते समय उन्होंने जगदीशको देखा था। गोरा, लम्बा, सुडौल, आकर्षक और धनी पिताका एक मात्र पुत्र जगदीश, हरप्रसाद बाबूके लिये बहुत बड़ा प्रलोभन था। वह जानते थे कि कन्याकी अवस्था अधिक है। जोड़ ठीक नहीं है। फिर भी—फिर भी—प्रलोभन बहुत बड़ा था। एक भयङ्कर भार उतर जानेका सुख उन्हें पागल बनाकर, मूर्ख बनाकर, किसी दूसरी ही ओर खींचे लिये जा रहा था।

परिस्थिति बड़ी ही भयङ्करा होती है। इसके चंगुलमें पड़कर विरला ही कोई 'आदमी' रह जाता

है। फिर हमारे समाजकी परिस्थिति ! उफ़ ! इससे ईश्वर ही बचाये !!

यदि हरप्रसाद बाबूके दिन सोनेके होते तो वे कन्या दिखलानेका प्रस्ताव सुनकर पचास बल खाये बिना न रहते—अपमान हो जाता। पर अपने दिनोंका मुंह देखकर उन्होंने वृद्ध पुरोहित पण्डित रामचन्द्र दूबेसे कहा—

"आपके आगमनका शोर हो जानेपर लड़की सामने आनेपर संकोच करेगी। मैं उसे इसी समय बुलाता हूं। पहले आप देख लें। फिर कुशल-मङ्गल होगा।

"बेटी !—बेटी सुरूपा ! जरा मुझे पानी तो दे जा।"

भीतरसे आवाज़ आयी—

"आयी बाबूजी।"

सुरूपा कलई किये हुए पीतलके गिलासमें पानी लेकर आयी। अपने पिताके पास किसी दूसरे व्यक्तिको देखकर वह थोड़ा रुकी—झिझकी।

"कोई हर्ज नहीं" हरप्रसादजीने सहारा देते हुए कहा "ले आओ।"

साठ वर्षके बूढ़े पण्डितजी आँखें मल-मल कर उस रूपकी राशिको निहारने लगे। इतना सौन्दर्य! इतना आकर्षण!! सुरूपाके रूपने मूक भवनको मानो भाषा-दान कर दिया, जीवनसे भर दिया!

जबतक सुरूपा पास थी तबतक पण्डितजीकी विचार शक्ति उनके पास न थी। जब वह चली गयी तब पुरोहितको होश हुआ। सोचने लगे—अच्छी है, परम सुरूपा है। पूरी लक्ष्मी है। जगदीशके...।

जगदीशका स्मरण आते ही उसका चित्र पण्डित जीके नेत्रोंके सम्मुख आ गया। जगदीश और सुरूपा—सुरूपा और जग—दीश! सुरूपा यौवनके प्रभातमें—जगदीश किशोरावस्थाके स्वप्नमें। सुरूपा और जग—नहीं। जोड़ी—नहीं।

अबतक बाबू हरप्रसाद मानों पण्डितजीके भावोंको पढ़ रहे थे। उन्होंने देखा कि छाया-चित्रकी चञ्चल तस्वीरोंकी तरह पुरोहितके मुख पर—आंखोंमें, ओठों-

पर—अनेक भाव आये और मुस्कराकर चले गये ब्राह्मणके मुखपरके अन्तिम भावको देखकर दुनिया देखे हुए बाबू हरप्रसाद विचलित हो उठे। उन्होंने सोचा इस समय सोचनेका मौका देना घातक होगा।

"आपने देखा महाराज, सुरूपा लक्ष्मी है। विदुषी है।"

पण्डितजी चुप रहे।

"इसने हिन्दी मिडिल तक कन्या पाठशालामें पढ़ा है। सोना-पिरोना भी जानती है। पूरी गृहिणी है।"

पण्डितजीका मुख मौन था पर आँखें बोल रही थीं। शायद दबी ज़बानसे कह रही थीं—"यह सब तो है पर कन्या कुछ बड़ी है।"

इसके बाद पुरोहित और पुत्रीके पितामें क्या-क्या बातें हुई यह कहना असम्भव है। पर, स्टेशनकी ओर लौटते समय पण्डित रामचन्द्र दूबे वैसे ही प्रसन्न थे जैसा चोर चोरीमें सफल होनेके बाद होता है। बाबू हरप्रसादजीने पण्डितजीको दक्षिणा-रूपमें १०१) रुपये दिये थे!

कानपुर पहुंचते-पहुंचते वृद्ध पुरोहितने उन रुपयोंको कमसे कम पचास बार गिना। कभी काँपती अंगुलियोंसे, कभी उछलते कलेजेसे। कभी मुस्कराते हुए और कभी ठंढी साँस लेते हुए!

मालूम पड़ता था पुरोहितके हृदयमें भयानक युद्ध हो रहा था।

५

व्याहकी खबर जगदीशके लिये कोई विशेषता न रखती थी। उसने सुन रखा था, कई बार देखा भी था—सबका व्याह होता है। खाने, पहनने, सोने, जागनेकी तरह व्याह भी आवश्यक था। व्याहकी तैयारी देख कर वह प्रसन्न था; पर, उसकी प्रसन्नता मौलिक नहीं थी। ठीक जैसे बच्चे दूसरोंको हंसते देख आप भी हँस देते हैं; वैसीही, जगदीशकी हालत थी। धूम-धाम, चमक-दमकके कपड़े और ज़ेवर, मङ्गल-गान और मंत्रोच्चार, पूजन और लोकोपचार आदि एक अजीब कौतूहलसे भरे जान पड़ते थे। मौर पहनना

पहले तो अच्छा लगा, पर पीछे कुछ भार-सा मालूम पड़ने लगा। मगर बुरा नहीं था। मण्डपमें जब वधू बगलमें आकर, वेदोंको आज्ञासे, बैठ गयी तब जगदीशने सोचा—अच्छा तमाशा है। यह लड़की कैसी होगी? गोरी। हां हां गोरी। मां कहती थीं। सुन्दर भी—मां कहती थीं। लक्ष्मोकी तरह—मां कहती थीं। ज़रा देखता—लक्ष्मी कैसी होती है?

व्याह हो जानेके बाद फिर कुछ नहीं। वधू साल भर बाद आनेको थी। आनन्द शङ्करकी इच्छा देख कर—हरप्रसादजीने भी कन्याकी विदाईके लिये ज़ोर नहीं दिया। जगदीश अपनी पढ़ाईमें लग गया। भूल गया कि उसके गलेमें कोई प्राणी भी बांध दिया गया है।

आखिर एक दिन गौना भी हो गया। जिस समय शोड़षी सुरूपाने अपने पतिके घरमें पैर रखा उस समय उसके यौवनका बसन्त था। जगदीश चौदह वर्षका अज्ञान बालक था, नवीं श्रेणीका विद्यार्थी था।

*　　*　　*　　*

आँखोंमें आँसू

श्रावणका महीना था। प्रकृतिने विश्व-प्रांगणमें उन्मादका घड़ा ढुलका दिया था। निशा-सुन्दरी पुलकित कलेवर जान पड़ती थीं—शायद काले बादलोंकी मण्डलीकी मस्ती देख कर, मोरोंकी आवाज सुनकर, पपीहाकी पुकार श्रवण कर!

भवनके तीसरे खण्ड परके एक कमरेमें, आराम कुर्सीपर बैठी हुई सुन्दरी सुरूपा, श्रावणकी सुषमा देख रही थी। वह यौवनके भारसे लदी, उन्मादसे ओतप्रोत थी। प्रकृति सुन्दरी भी यौवनके भारसे लदी और उन्मादसे ओतपोत थी। परन्तु दोनोंकी अवस्थाओंमें पृथ्वी आकाशका अन्तर था। प्रकृतिके प्राण घनश्याम, सुरूपाके हृदयाकाशके काले बादल थे। वह—"आयी काली बदरिया ना" नहीं—"बदरिया बधन बिरहिनो आयी" थी।

"यह सुख है?" एक लंबी साँस लेकर सुरूपाने सोचा "यह सुख है? इतना यौवन, इतना उन्माद, इतना रूप और इतनी लालसा लेकर मैं वर्षों से बैठी हूं। वर्षोंसे बैठी हूं कि देवता चेतें तो पूजन करूं।

रूपको और यौवनको सफल बनाऊँ ; पर...........

वायुने वृष्टिके ख़ज़ानेसे एक मुट्ठी छोटे-छोटे मोतियोंको चुरा कर सुरूपाकी ओर फेंक कर मारा। कुछ उसकी आँखें चूमने लगे, कुछ कपोल और कुछ अधर! दो-चार वक्षस्थलपर भी पड़े! उफ़! सुरूपा कांप उठी! आगकी तरह जलने लगी! उन मोतियोंमें क्या था?

"बिलकुल लड़के हैं, बच्चे हैं, भोले हैं। मेरे देवता नादान हैं। यह ऋतु, यह बादल, यह सुख! उफ़!"

इसी समय कोर्सकी पाँच-सात पुस्तकें हाथमें लिये जगदीश आये।

सुरूपाने देखा; पर, अपनी जगहसे हिली तक नहीं। उसका हृदय कह रहा था कि आज देवता ज़रूर प्रसन्न होंगे। मुझसे हँसेंगे, बोलेंगे—और—और मैं मान करूँगी। अहा! वह दिन कौनसा होगा जब देवता कहेंगे—"यह ऋतु रूसिबेकी नाहिं।"

देवताकी त्रैमासिक परीक्षा निकट थी। श्रावण उनके लिये कुछ आकर्षक नहीं था। उलटे फतिंगे

तकलीफ़ ही देते थे। उन्होंने सुरूपाकी ओर एक बार देखा, मुस्कराये भी। बोले—

"आओ! 'एटलस' की तस्वीरें देखो!"

सुरूपाने आँखें बन्द कर लीं। सुना ही नहीं। जगदीशने सोचा—"नींद आती होगी, सोने दो।" बस, बैठ गये नाना फड़नवीसको रटने। दस मिनट; बीस मिनट। घंटा, दो घंटे। सुरूपा खीझ उठी। झपटकर मेज़के पास पहुंचकर हिस्ट्रीकी पुस्तक जगदीशके सामनेसे उठा ली और जोरसे दूर फेंक दी।

"बस करो! हो चुकी पढ़ाई। कैसे आदमी हो!"

"अरे—अरे!"

"इधर आओ।" हाथ पकड़कर जगदीशको सुरूपाने कुर्सीपरसे उठाकर, जबर्दस्ती भुजाओंमें कस लिया। वह उन्मादसे पगली होकर अबोध पतिको चूमने लगी।

पर—पर। उसे मालूम पड़ा मानो तकियाको भुजाओंमें कसे है। संगमर्मरकी मूर्ति चूम रही है। ठण्ढा! चुम्बनमें, आलिङ्गनमें बिजलीकी वह धारा

नहीं थी जो हृदयके स्पर्शसे हृदयमें प्रवाहित होने लगती है। प्रश्न था—और प्यासे प्राणोंका व्यग्र प्रश्न था। पर, उत्तर नहीं था—

और अज्ञान जगदीश? वह अपनी उन्मादिनी पत्नीकी भुजाओंमें उसी तरह प्रसन्नवदन, धवल, सुन्दर और निर्लिप्त था जैसे जलमें कमल। वह बचपनके स्वर्गसे धकेल ज़रूर दिया गया था पर अभी ड्योढ़ीके भीतर ही था—बाहर नहीं। उसकी स्त्री बाहर थी। दूसरे देशमें थी, दूसरी भाषा बोलती थी। उस भाषाका सीधेसादे जगदीशको उतना भी ज्ञान नहीं था जितना अंग्रेज़ी भाषाका।

६

मैं बम्बईसे गोरखपुर जा रहा था। मेरे हाथ हथकड़ीमें कसे थे। दाहिनी भुजापर एक चमड़ेका लम्बा चौड़ा फीता था जिसे एक सिपाही होशियारीसे पकड़े रहता था। साथमें, बम्बई-पुलीस-विभागके दो सिपाही थे और एक हवलदार। तीन

काली-काली और लम्बी-लम्बी सङ्गीनदार रायफ़लें थीं। मानों मैं कोई भयानक जानवर था जिसपर इतना कड़ा पहरा था।

झांसीमें प्यास लगी। हिन्दू जितना नहीं हूं उतना शरारती हूं। मैंने हवलदारसे कहा—

"बड़े मियां, प्यास लगी है।"

"बधनेमें पानी है पियो। असहयोगी लोग धरम और जात-पात तो नहीं मानते। क्यों?"

"आप ठीक कहते होंगे। पर, मैं मानता हूं। काशीका ब्राह्मण हूं। नीचे उतरिये। हथकड़ी और चमड़ेका पट्टा खोलिये। हिन्दूसे साफ़ लोटेमें पानी मँगाइये। तब कहीं मेरी प्यास बुझ सकेगी।

हवलदार और सिपाही सज्जन थे। बम्बईकी पुलिस हमारी पुलिससे अधिक शिष्ट और सभ्य भी होती है। हमलोग गाड़ीसे उतरे। पानी मंगाया गया। सिपाही मुझे घेर कर खड़े हो गये। एक छोटी-सी दर्शक-मण्डली भी एकत्र हो गयी। मैं जल-पान करने लगा।

जल-पानमें अधिक देर तो नहीं लगी ; पर, गाड़ी छूटते-छूटते छूट ही गयी । हमलोगोंने सोचा—दूसरी गाड़ीसे चलेंगे—कई दिनोंकी यात्रासे थके भी हैं। बारह घण्टे बाद दूसरी गाड़ी आयेगी। तबतक नहा-धोकर ताज़ा हो लिया जाय।

हम—लदे-बँधे—मुसाफ़िरख़ानेमें आये।

"अहा!" मुसाफ़िरख़ानेकी एक ओर देखकर हवलदारने कहा—"बड़ी ख़ूबसूरत औरत बैठी है। सामान है और वह है। स्टेशनके सिपाही और 'आफ़ ड्यूटी' वाले बाबू उसकी चारों ओर कैसे मँडला रहे हैं। उधर ही चलो। पास ही बैठा जाय—...।"

मैंने भी देखा स्त्री रूपवती थी, युवती थी, सौन्दर्य रत्नाकरका एक रत्न थी। अकेली?—क्यों? उंहं। तुमसे वास्ता। पहने हो हथकड़ी, पूछते हो क्यों? कोई होगी—दुनिया है।

पर उसका रूप चुप रह जाने लायक़ नहीं था। उसके चेहरेपर अच्छे कुलकी छाप थी। वह अपनी 'कुलवती' की परिभाषामें आती थी। अकेली क्यों?

यह यौवन—यह अवस्था—अकेली !

मैंने हवलदारसे कहा—

"पूछिये हैं कौन ?"

"क्या मर्ज़ी है लीडर साहब ? आप जेलकी ओर जा रहे हैं।"

"मज़ाक़ न कीजिये। ज़रा पूछिये। मुझे कुछ शक मालूम देता है।"

"तब हज़रत ही पूछें। आपको मुझसे जल्द जवाब मिलेगा। दीजिये एक लेक्चर।"

हवलदार ज़िन्दा-दिल था। उसका 'लेक्चर' कितना मौलिक था।

मैंने भी जी कड़ाकर उस स्त्रीसे एक प्रश्न किया ही—

"आप कहाँ जा रही हैं ?"

किंचित सङ्कोचसे युवतीने कहा—"बम्बई।"

"बम्बई !" आश्चर्यसे मैंने पूछा—"बम्बई अकेले ? आप तो इसी तरफ़की मालूम पड़ती हैं।"

"मैं अकेली नहीं हूं। वे पानी लेनेके लिए उतर

कर पिछले स्टेशनपर छूट गये हैं। वे— उनका नाम अब्दुलहमीद है।"

"अब्दुलहमीद! मैं आपको हिन्दू समझ रहा था। आप मुसलमान हैं—क्या?"

एक धीमी साँसके साथ स्त्रीने कहा—"जी। अब तो—हाँ, मैं मुसलमान हूं।"

"अब?" जीमें आया कह दूं कि मालूम पड़ता है कुछ छिपा रही हो, पर हिम्मत न पड़ी "आप मुसलमान। जी नहीं चाहता कि आपको—माफ़ कीजियेगा—मुसलमान मानलूं।"

"क्यों? मुसलमान ख़राब होते हैं क्या?"

"नहीं।" बात बढ़ती देख प्रसन्न होकर मैं कहने लगा—"परमात्माकी सृष्टिमें ख़राब कुछ भी नहीं है। पर वे हिन्दू नहीं हैं इसलिये कुछ दूसरे-से मालूम पड़ते हैं। मैं हिन्दू हूं—ख़ून पक्षपाती होता है।"

मेरी बातका अन्तिम भाग अप्रिय सत्य था; पर, वह उससे चिढ़ी नहीं। मेरा सन्देह सत्यका रूप पकड़ने लगा। हिम्मत बढ़ गयी। मैंने कहा—

"सच बताइये, आप हिन्दू नहीं हैं?"

"मान लीजिये नहीं हूं—फिर?"

"पहले साफ़ कहिये आप हिन्दू हैं?"

"साफ ही कहती हूं। मैं हिन्दू थी, मुसलमान हूं।"

मैं स्तब्ध-सा रह गया।

"बस। आपको सन्तोष हो गया? चुप क्यों हो गये?"

"कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती।"

"कहिये—पूछिये। मैं उत्तर दूंगी। हिन्दूको पूछनेकी हिम्मत चाहे न हो मुसलमान उत्तर देना जानता है।"

सर झुकाकर मैंने मुसलमानकी प्रशंसा स्वीकार कर ली।

७

रमज़ान, जगदीशके व्याहके एक वर्ष पहले ही दूसरी दुनियाको कूच कर गया था। वह तीन पुश्तसे

जगदीशके घरका मुलाज़िम था। कोचवान था। उसने जगदीशके दादाके लिये भी गाड़ी तैयार की थी, पिताके लिये भी और स्वयं उसके लिये भी। वह भी जगदीश-परिवारका एक अङ्ग-सा बन गया था। जगदीश उसे 'रम्मू चाचा' कहता था और वह जगदीशको 'छोटे सरकार'।

मरनेके वक्त रमज़ानने आनन्दशङ्करसे कहा—

"हुज़ूर हीकी ख़िदमतमें मेरी ज़िन्दगी बसर हुई है। अब मेरे बाद अपने ख़ादिम, अब्दुलहमीदकी परवरिश भी हुज़ूर हीको करनी होगी। वह हज़ूरका ही नमक खा कर इतना बड़ा हुआ है—आपके ही अकबालसे जी रहा है।"

रमज़ान भी जानता था, अब्दुलहमीद भी; कि, इस सिफ़ारिशकी कोई ज़रूरत नहीं थी। सहज उदार आनन्दशङ्कर, अब्दुलहमीदको स्नेह-दृष्टिसे देखते थे। उसकी अवस्था जगदीशसे पाँच वर्ष अधिक थी। जिस समय जगदीश नहीं था, उसी समयसे सोनारानीके हृदयमें अब्दुलहमीदने घरकर रखा था। एक दिन

अब्दुलहमीद्की माँ उसे गोद्में लिये बैठी, सोना-रानीसे मीठी-मीठी बातें कर रही थी। इसी समय आनन्दशङ्कर आये। सोनारानीने पतिसे एकान्तमें कहा—

"बच्चा कैसा सुन्दर है! उसकी माता जब उसे गोद्में लेकर बैठती है तब मानों मुझसे कहती है—तुम्हारे धन है तो क्या, यह तो नहीं है? इस सुखके आगे धन नाचीज़ है। कुछ है ही नहीं।"

आनन्दशङ्करने एक धीमी साँस ली।

"बिना सन्तानका धन—बिना नमककी दाल है—फीका है।" एक लम्बी साँस और दो बूंद आँसुओंके साथ सोनारानीने कहा।

तभीसे अब्दुलहमीदकी क़द्र होने लगी। ऐसा कोई भी दिन न जाता जिस दिन दो-चार आने सोना-रानीके हाथसे अब्दुलहमीद्को न मिलते। उसके लिये भीतर बाहर कहीं भी आने-जानेकी रोक न थी।

अस्तु। रमज़ानकी मृत्युके बाद अब्दुलहमीद्को

छोड़, आनन्दशङ्करका कोचवान और कौन हो सकता था?

* * * *

गाड़ी दरवाज़ेपर लाकर, अब्दुलहमीदने ड्योढ़ी-परके नौकरको पुकार कर कहा—

"खदेरू, सरकारको ख़बर कर दो गाड़ी तैयार है।"

अब्दुलहमीदकी आवाज़ खदेरूने ही नहीं, एक व्यक्तिने और सुनी। वह सुरूपा थी। कोई पुस्तक हाथमें लेकर पन्ने उलट रही थी। जीमें आया, खिड़कीसे झाँककर देखूं। गाड़ीको, रास्तेको या पुकारनेवालेको—किसी वस्तु या व्यक्ति विशेषको देखनेकी इच्छा नहीं थी। मनकी साधारण उत्सुकता थी—देखूं!

खिड़की मीठी आवाज़से खुली। नीचेसे अब्दुल-हमीदने उस मीठी आवाज़की ओर देखा, खिड़कीकी ओर नहीं। ऊपरसे सुरूपाने नीचेकी ओर देखा, किसी ख़ास व्यक्ति की ओर नहीं। दोनोंकी आँखें—अचानक, संयोगकी लीलासे—चार हो गयीं!

ऊपरसे कुलवती ललनाके युवक हृदयने लज्जा सङ्कुचित, आश्चर्य-विस्मित होकर कहा—

"अरे...अरे!"

"अरे...अरे!"

नीचेसे अशिक्षित मुसलमान युवकके उद्धत हृदयने उत्तर दिया!

इस बार खिड़कीका स्वर मीठा था ज़रूर; मगर, ज़रा तीखा था। वह तेजीसे बन्द की गयी थी।

* * * *

झाँसी स्टेशनके मुसाफ़िरख़ानेकी सुन्दरी युवती सुरूपा ही थी!

उसकी रोमाञ्चकारी कथाका अन्तिम भाग, उसीके शब्दोंमें इस प्रकार है—

"अब्दुलहमीद—विजातीय, विधर्मी अब्दुलहमीद—की मूर्तिको अपने हृदयमें घर करते देख पहले मुझे अपने ऊपर भयानक घृणा हुई। धर्म था, कुल था, रक्त था। माता-पिता थे, मान-मर्यादा थी—और—

और, सबसे बढ़कर था स्त्रीका हृदय। अब्दुलहमीद? छिः! बड़ा मंहगा, बड़ा गंदा सौदा था!

"मगर—मगर, न बच सकी। बड़ा एकान्त जीवन था, बड़ा नीरस जीवन था। पिताके घर 'सोलह वर्षों' तक लड़कीकी तरह रहनेके अभ्यासके आगे ससुरके घर 'पतोहू' की तरह रहनेका अभ्यास कारा-वास मालूम पड़ने लगा। जेल तो, सुना है, इतना बुरा नहीं होता। फिर, वहाँके जीवनकी अवधि होती है—साल, दो साल, दस साल। पतोहूका जेल—उफ़! उसकी कड़ी सज़ाकी कोई अवधि नहीं। इसीसे तो बच न सकी।

"पुरुष, खाने पहननेके दुःखके साथ 'कोई साथी नहीं है' को भी दुःख—समझता है। स्त्रियोंकी भी यही हालत है। इससे भी बुरी हालत है। पुरुष प्रकृत-वीर और निर्भय होते हैं—स्वावलम्बी होते हैं। स्त्रियाँ, प्रकृत-भीरु और अबला होती हैं, पराश्रिता होती हैं। कानपुरमें सब सुख था; मगर, कोई हृदयकी वेदना सुननेवाला नहीं, हृदयको शांत करनेवाला

नहीं, घण्टोंतक बिना सिर पैरकी बातें करनेवाला नहीं था। यह ऐसा भयानक नरक, ऐसी भयानक ज्वाला थी जिससे बचनेके लिये मुझे अपना सर्वस्व खो देना पड़ा!

"मैं गिर पड़ी। नहीं यह ठीक नहीं। मैंने जान-बूझकर, अपने ही हाथोंसे आँख और कान बन्द कर, अपने आपको—स्वर्ग पानेकी अभिलाषासे—नरकमें धकेल दिया! पर हाय! मेरे भाग्यमें स्वर्ग कहाँ? मुझे देखकर नरक भी नाक सिकोड़ता है! मेरे वर्तमान जीवनका अर्थ—एक शब्दमें—है, 'खैंचातानी!'"

*　　*　　*　　*

इसी समय अब्दुलहमीद—गोरा, लंबा, सुन्दर अब्दुलहमीद—आया। हमारी गाड़ीका 'लाइन क्लियर' भी आया! बारह घण्टे बीत गये! उफ़!! इतनी जल्द—विश्वास नहीं होता!

हवलदारने अपने दोनों मातहत सिपाहियोंसे कहा—"क़ैदीको ले चलो!"

सिपाहियोंके बूटोंकी आवाज़ हुई, रायफ़लें झनझनसे

बोल उठीं, हथकड़ी हिली, चमड़ेका फ़ीता खींचा गया—मैं लड़खड़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ !

चलनेके पहले मैंने सुरूपाकी ओर देखा—आँखोंमें आँसू थे।

सुरूपाने मेरी ओर देखा—आँखोंमें आँसू थे।

अभागिनी सुरूपा !

अभागा हिन्दू-समाज !!

—:—



७

भिखारिन

एक वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्ताके मछुआ-बाज़ारकी एक गलीमें एक भिखारिन चली जा रही थी। उसके तनपर गन्दा और कई स्थानोंपर बुरी तरहसे फटा हुआ पुराना चूड़ीदार पायजामा, और उसी तरहका एक कुरता था। माथेपर चद्दरके स्थान-पर दो हाथ लम्बा और हाथभर चौड़ा कपड़ा—कपड़ा क्या चीथड़ा—था। प्रातः ६-१० बजेका

समय था। व्यापार-जीवी जन अपने अपने धन्धेकी धुनमें इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आ-जा कर गलीके शान्त हृदयपर अशान्तिका सिक्का बैठा रहे थ।

एक नवयुवक मुसलमानको अपनी बग़लसे गुज़रते देख भिखारिनने सवाल किया—

"खुदाके नामपर, बड़े मियां, कुछ रहम हो।"

"क्या ??" नवयुवकने ज़रा ग़ौरसे सवाल करनेवालीकी ओर देखा। वह युवती थी।

"बड़ी भूख लगी है" युवकको रुकते देख भिखारिनने अपने सवालको दुहराया "कलसे ही कुछ खानेको नहीं मिला है। कुछ मिहरबानी हो, खुदा आपको सलामत रखे।"

"घरपर चलेगी ?" युवकने भिखारिनसे ऐसे स्वरसे पूछा जिसमें दयासे अधिक शोहदपन था।

युवककी दुष्टता-भरी आँखों और मुस्कराते हुए मुखको देखकर भिखारिनके कपोलोंपर सुर्खी दौड़ गयी। उसने विनम्र भावसे उत्तर दिया—

"यहीं कुछ रहम कर दीजिये,"

"घरपर चल तो सब कुछ किया जा सकता है—यहां नहीं। पासमें पैसे नहीं हैं।"

"तो जाने दीजिये। किसी दूसरे दाताका दरवाज़ा खटखटाऊंगी। (सामने एक मकानकी ओर अंगुली दिखाकर) यह मुसलमानका घर है?"

"तो मेरे घरपर न चलेगी?"

"नहीं। ज़रा बतला दीजिये, यह किसी मुसलमानका घर है?"

नवयुवक मुसलमानने भिखारिनको घरपर चलने पर राज़ी होते न देख, ज़रा चिढ़कर कहा—

"हां, जाओ। वहां तुम्हारी ख़ातिर हो जायगी। मुसलमानका घर है।"

युवक आगे बढ़ा। भिखारिन भी उस मकानकी ओर बढ़ी। मकानका दरवाज़ा छूते ही खुल गया और सीढ़ियोंका सिलसिला दिखाई पड़ा। एकबार क्षणभरके लिये भिखारिन हिचकी, मगर; फिर

न जाने क्या सोचकर, धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

सीढ़ियोंके सिरे पर दूसरा दरवाज़ा दिखाई पड़ा जो खुला था। दरवाज़ेसे सटा हुआ, साधारण ढंगसे सजा, एक कमरा था। आपसमें सटी हुई दो-तीन चौकियोंपर गद्दे और सुफ़ेद चादर बिछे थे, और उसपर, मसनद्के सहारे बैठा कोई नवयुवक कुछ पढ़ रहा था। युवक लम्बा, गोरा और सुन्दर था। उसकी अवस्था १७-१८ वर्ष की मालूम पड़ती थी। भिखारिन दरवाज़ेके पास चुपचाप खड़ी होकर युवककी ओर देखने लगी; मगर, युवकको इस युवती भिखारिनके आनेकी कोई ख़बर नहीं। इसी समय मकानके भीतरसे आवाज़ आयी—

"राम! बाहर जाना तो मुझसे कहकर जाना। मैं दरवाज़ा बन्द कर दूंगा।"

"अच्छा, बाबूजी!" कहकर युवकने अपनी गर्दन फेरी। दरवाज़ा पर जो नज़र गयी तो देखा कि चीथड़ोंमें लिपटी हुई लक्ष्मी-सी सुन्दरी कोई स्त्री खड़ी

है। यह रूप ! यह वेश !! माजरा क्या है ? युवक बिना हिले-डुले चुपचाप उस युवतीकी ओर देखने लगा। युवतीके कपोल रूखे थे, मगर थे गुलाबी। होठ सूखे, मगर थे सरस ! उसकी आंखोंकी चारों ओर कालिमा थी, मगर आंखें बोलती थीं। गन्दे और फटे कुर्ते और पायजामेके बाहर उसका चम्पक-वर्ण शरीर देखनेसे मालूम पड़ता था मानों सौन्दर्य फटा पड़ता है। क्षणभर मुग्ध दृष्टिसे उस भिखारिनके सौन्दर्यको देखनेके बाद युवकको कर्त्तव्यका ज्ञान हुआ। वह ज़रा संभल कर बैठ गया। उसने, उस मुस्कराहटके साथ जिसे हृदय अधिक देखता है आंखें कम, उससे पूछा—

"क्या है ?"

उसी स्वर और उसी भावसे भिखारिनने भी पूछा—

"तुम मुसलमान हो ?"

भिखारिनका "तुम" असभ्य था, धृष्ट था ; मगर,

युवकको वह बड़ाही प्यारा मालूम पड़ा। उसने उत्तर दिया—

"मैं मुसलमान नहीं, हिन्दू हूं। क्यों?"

"नहीं, तुम मुसलमान हो" कहकर भिखारिन मुस्करा पड़ी।

युवक चौकीसे नीचे उतर भिखारिनके सामने, दरवाज़ेके पास जा खड़ा हुआ और कहने लगा—

"आख़िर तुम्हें चाहिये क्या?"

"भीख—पैसे!"

"तुम भीख माँगा करती हो? तुम्हारी ज़ात क्या है?"

"देखते नहीं हो! मैं मुसलमान हूं।"

"कहां घर है?"

"लखनऊ,"

"यहां कलकत्तामें क्या करती हो?"

"भीख माँगती हूं।"

भिखारिन युवकके प्रश्नोंका ढंग और उसके चेहरेका उतार चढ़ाव देखकर हंसने लगी।

"कुछ देते हो?" भिखारिनने युवकसे पूछा।

"क्या लोगी?"

"जो दे दो—"

"अच्छा ज़रा ठहरो। बाबूजीको बुलाता हूं। वही देंगे।"

"तब मैं जाती हूं। तुम्हें कुछ देना-लेना नहीं है।"

भिखारिन एक सीढ़ी नीचे उतर गयी; मगर, लीलासे आंखें ऊपर चढ़ाकर। युवकने उसे पुकारते हुए कहा—

"जाना नहीं—जाना नहीं। एक बार बाबूजीसे पूछ लूं; फिर तुम्हें कुछ न कुछ दूंगा। ज़रूर दूंगा।"

२

नवाबज़ादी

युवक भिखारिनको वहीं छोड़ घरके भीतर गया और थोड़ी देर बाद एक दूसरे पुरुषके साथ लौटा। दूसरे पुरुषकी अवस्था पचास वर्षोंकी मालूम पड़ती

थी। उसके सिरके आधेसे अधिक बाल सुफ़ेद हो गये थे। मुखपर बड़ी-बड़ी मूँछें और दाढ़ी थी। उसका चेहरा बड़ा रोबदार मालूम पड़ता था। वही युवकका "बाबूजी" था।

भिखारिनको सिरसे पैरतक कई बार देख लेनेके बाद उन्होंने पूछा—

"तुम अकेली हो या तुम्हारे कोई और भी है?"

भिखारिनकी नीचे झुकी हुई आँखें इस प्रश्नपर सजल होगयीं। उसने गम्भीर होकर कहा—

"इस वक्त मैं दुनियामें अकेली हूं।"

"तुम्हारा रूप साधारण भिखारिनोंसे भिन्न है। अनुभवी आँखें इस फटी अवस्थामें भी तुम्हें भिखारिन माननेको तैयार नहीं हो सकतीं। तुम्हारे पिता माता क्या करते थे?"

भिखारिनकी आंखोंसे निकलकर, पानीके दो छोटे टुकड़े उसके गुलाबी गालोंपर चमकने लगे। युवकने देखा—सौन्दर्यको जीवन मिल गया! वृद्धने देखा—रूप कविता करने लगा!

"मेरे पिता माता" भिखारिनने कहा—"दिनमें अपनी बदक़िस्मती पर रोया करते थे और रातमें मुंह छिपाकर, वेश बदलकर, पेटको भरनेके लिये, भीख माँगा करते थे!"

"क्या वे हमेशाके भिखमंगे ही थे!"

"नहीं" एक लम्बी सांस खींचकर भिखारिनने कहा, "हमारे दादा लखनऊके एक नवाब थे। अवधसे नवाबीका ख़ातमा होनेके बाद मेरे दादाने अंग्रेजोंका विरोध और लखनऊके नवाब वाज़िद अलीका समर्थन किया था। वाज़िदअली शाहके क़ैद हो जानेके १५ साल बाद दादाकी मौत हो गयी। उस वक्त भी मेरे पिताके पास, हमारी ज़िन्दगी आरामसे बसर करने भरको, काफ़ी धन था। मगर, पितामें नवाबोंका ख़ून था। उन्होंने पैसेको पानीके भाव बहानेका अभ्यास किया था। जबतक उनके पास धन था वे उसकी कुछ भी परवाह न करते थे। आख़िर एक दिन हम एकदम भिखमंगे हो गये। दाने-दानेके मुहताज हो गये और हिन्दुस्थानके कोड़ियों नवाबोंकी

तरह हो गये दरवेश। मेरे वालिद और वालदा पर जो-जो मुसीबतें गुज़री हैं उन्हें मैं आपको सुना नहीं सकी। मेरे तीन बड़े भाई और एक बहन एक टुकड़ा रोटी और 'चुल्लू भर' पानीके लिये मर गये। तकलीफें झेलते-झेलते और भीख मांगते-माँगते मेरे मां-बाप अन्धे होकर, तीन महीने हुए, दुनियासे कूच कर गये! नवाबीके उन लाड़लोंको कोई दफ़नानेवाला भी नहीं था। उनकी वही हालत हुई जो लावारिस मुर्दोंकी हुआ करती है।

"वालिदके सामने ही लखनऊके आवारों और शोहदोंकी बद-नज़र मेरे ऊपर थी। उनके मरनेके बाद मेरा वहाँ रहना दूभर हो गया। मेरी बेइज़्ज़ती करनेकी ताकमें पचासों बदमाश लग गये। मुझे सहारा देनेवाला कोई नहीं। लाचार होकर मुझे लखनऊसे भागना पड़ा। कलकत्ताकी मैंने बड़ी तारीफ़ सुनी थी। सुना था, वहां हज़ारों ग़रीब-दुखिया सुखसे जीते हैं। इसीलिये मैं यहाँ भाग आयी। मगर उफ़!! यहां भी दुनियाका वैसा ही रुख़ है जैसा लखनऊमें।

यहां भी रहम करनेवाले कम हैं और दोज़ख़ी-कुत्तोंकी भरमार है। १५ दिनोंसे इस शहरकी हालत देख रही हूं। जिसे देखो वही आवाज़ा कसने और बेइज़्ज़त करनेको तैयार है; मगर, ख़ुदाके नामपर किसी ग़रीब-को पनाह देनेवाला कोई नहीं। मैंने न जाने कौन सा गुनाह किया था जिसका नतीजा इस तरह भुगत रही हूं। मेरी क़िस्मतमें मौत भी......।"

भिखारिनकी आँखोंके मोती उसके रूखे और गन्दे पैरोंपर बरसने लगे!

युवकके बाबूजीने कहा—

"इस घरमें रहोगी, बेटी?"

"मैं मुसलमान हूं।"

"कोई हर्ज नहीं। मुसलमान भी आदमी है, हिन्दू भी। मैं आदमी-परस्त हूं, हिन्दू या मुसलमान-परस्त नहीं। तुम्हें अगर कोई एतराज़ न हो तो इस घरमें तुम्हारे लिये बहुत जगह है।"

भिखारिनकी नीचे झुकी हुई आंखें ऊपर उठीं। वृद्धकी आंखोंने देखा उस अभागिनीके नेत्रोंमें एक

इतिहास था जिसे "हिन्दू" नहीं, "मुसलमान" या "ईसाई" भी नहीं, केवल "आदमी" ही पढ़ सकता था !

३

गोपालजी

नवयुवकका नाम था रामजी और उसके बाबूजीका गोपालजी। गोपालजीको उनके वंशका जो कुछ इतिहास मालूम था वह विचित्र था। जिस व्यक्तिको गोपालजी अपना पिता समझते थे उसने अपने अन्तिम समयमें उन्हें बुलाकर कहा—

"बेटा तुम मुझे "बाबूजी" कहकर पुकारा करते हो। सन्तान-हीन होनेके कारण मैंने और मेरी स्त्रीने तुम्हें पुत्रकी तरह पाला-पोसा और प्यार किया है। मगर; तुम हमारे पुत्र नहीं हो, तुम्हारी नसोंमें इस ग़रीब व्यक्तिका रक्त नहीं बहता है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं इस बातको तुमपर प्रकट न करता और तुम्हारे हृदयको ठेस न देता, मगर अब मुझे ईश्वरके

दरबारमें जाना है, किसीको असत्य और अन्धकारमें छोड़ देनेसे पाप होगा।

"तुम्हारी असली माँ क्षत्राणी थी, मैं वैश्य हूं। तुम्हारी माताके पति एक देशी रियासतके कर्मचारी थे। उसी रियासतके राजाकी नज़र तुम्हारी सुन्दरी और युवती मातापर गड़ी थी। वह किसी-न-किसी तरह उन्हें भ्रष्ट करनेकी धुनमें था; मगर, तुम्हारी माँ के पति भी वीर थे, क्षत्रिय थे। इसी कारणसे राजाकी हिम्मत न पड़ती थी। अन्तमें राजाने एक युक्ति सोची। तुम्हारी माँ के पतिको एक झूठे बहानेसे, रियासतके कामसे, परदेश भेज दिया; और वहीं—कभी यहाँ, कभी वहाँ,—डेढ़ वर्षतक रखा।

"पतिको विदेश भेज उसकी पत्नीको महाराजने पहले तो सीधेसे, लालच दिखाकर और भय दिखाकर अपने काबूमें करना चाहा। मगर जब युक्तिसे उनकी दाल न गली तब एक रात अपने गुप्त कर्मचारियोंको भेज, उन्हें ज़बरदस्ती घरसे पकड़वा मंगाया। किसीको कानोंकान ख़बर भी न हुई। उसी दिनसे

तुम्हारी माताके पतनका आरंभ हुआ। फिर वह बिना किसी तरहके एतराज़के महाराजकी सेवामें बराबर जाया करती थीं। आख़िर तुम्हारी सृष्टि हुई।

"मैं रियासतका १०) रुपये महीनेका एक साधारण कर्मचारी था। जिस दिन तुमने जन्म लिया उस दिन महाराजने मुझे बुलाया और मेरे हाथोंमें ५०००) रूपयेकी एक थैली और तुम्हें देकर कहा कि—'इस लड़केको लेकर तुम कहीं और जाकर रहो। देखो, यह रहस्य प्रकट न करना।' बस, मैं तुम्हें लेकर कलकत्ता चला आया। मेरी स्त्री, सन्तान न होनेके कारण, तुम्हें पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और हम दोनोंने तुम्हें अपनी औलादके नामपर समाजमें परिचित कराया, पढ़ाया-लिखाया। यह सब होते हुए भी हमारी सम्पत्ति तुम्हारी ही है। अब मैं मरनेवाला हूं; तुम अपने पिता या माताको खोजनेकी चेष्टा न करना। क्योंकि, संसार तुम्हारी बातोंको सुनकर केवल हँसेगा, तुम्हारा अपमान करेगा। अस्तु,

तुम मेरे पुत्र हो, मैं तुम्हारा पिता हूं और यह धर्म-माताही तुम्हारी जननी है ?"

यही है वृद्ध गोपालजीका वंश परिचय। मरनेके दो वर्ष पूर्व ही उनके पालक पिताने उनका व्याह भी कर दिया था। धर्म पिताकी मृत्युके कुछ ही दिनों बाद उनकी धर्म-माताकी भी इहलीला समाप्त हो गयी। फिर गोपालजी और उनकी स्त्रीके ही हाथोंमें उक्त वैश्य-परिवारकी बची-खुची सम्पत्ति आयी जिसे गोपालजीने बढ़ाया भी। एक बार लोहेकी दलालीमें उन्हें एक लाख रुपयेका मुनाफा हुआ। बस उन्हीं रुपयोंको बैंकमें जमा कर, गोपालजी समाजसे और व्यापारसे अलग रहकर जीवन-यापन करने लगे।

समाज और व्यापारसे अलग होनेका एक कारण था। जबसे उन्हें अपने जन्मका इतिहास मालूम हुआ तबसे उनकी विचित्र अवस्था हो गयी। वे अक्सर एक ठंढी साँस लेकर अपने किसी मित्र या स्त्रीसे कहते कि—"यह संसार धोकेबाज़ों, बदमाशों

और बेईमानोंका अखाड़ा है।" ईश्वरके तो नामसे उन्हें चिढ़ थी। उनकी चर्चा चलनेपर गोपालजी तमक कर कह उठते कि—"सब झूठ है, सब धोका है, इश्वर कोई नहीं , कहीं नहीं है। ग़रीबों और मूर्खोंपर अपनी हुकूमत कायम रखनेके लिये अमीरों और दुनियाको नरक बनानेवाले समझदारोंकी अक़्लने इस ईश्वरकी रचना की है। सब झूठ है, सब धोका है।"

गोपालजीके हृदयकी इस स्पष्ट तस्वीरको देखनेके लिये समाज तैयार नहीं हुआ। एक बात और भी थी। केवल "मानव-धर्म" के पुजारी गोपालजी किसी भी जातिके किसी भी आदमीके हाथसे खाना-पानी ग्रहण कर लेते थे। यह समाजके लिये असह्य था। मगर गोपालजी अपने धर्मके पक्के थे। वह समाजकी उपेक्षाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते और समाजके ढोंगी कर्णधारोंसे नफ़रत करते थे।

वृद्ध गोपालजीकी नज़रोंमें धर्म तुच्छ था, धन तुच्छ था, ढोंगियोंका समाज तुच्छ था, मन्दिर,

मसजिद और गिरजे तुच्छ थे और परम तुच्छ था उक्त सारी खुराफ़ातोंकी जड़ ईश्वर।

उनका हृदय आँसूओंके आगे पिघल उठता था, दुर्बलोंपर द्रवित होता था। संसारके कमज़ोर और अपमानित, दरिद्र और पतित उनके ईश्वर थे—मनुष्यत्व उनका धर्म था!

४

रामजी

रामजी जिस समय पाँच वर्षका अज्ञान बालक था उसी समय उसकी माता—गोपालजीकी पत्नी—का देहान्त हो गया था। तबसे बराबर गोपालजीके ही प्रेमसे उसका पालन पोषण हुआ। पिताका पुत्र और पुत्रका पितापर अलौकिक प्रेम था। स्त्रीका देहान्त हो जानेके बाद, चाहते तो, गोपालजी दूसरी शादी कर सकते थे; मगर, उन्होंने वैसा नहीं किया। उनका कहना था कि विवाहका मुख्य उद्देश्य प्रेम होना चाहिये, वासना नहीं। स्त्रीके न रहनेपर भी

उनके प्रेमका पात्र, उनका और उनकी पत्नीका सम्मिलित स्नेह-चित्र, रामजी तो था ही। फिर दूसरा विवाह करनेकी आवश्यकता?

स्त्रीकी मृत्युके बाद, पहले कुछ दिनोंतक, गोपालजीने एक अधेड़ ब्राह्मणीको, रामजीकी देख-रेख और भोजन तैयार करनेके लिये नौकर रख लिया था। मगर, बादको यह अनुभव कर कि, ब्राह्मणी देवी "राम दोहाई" और "भगवान जानें" की आड़में रामजीके हिस्सेका दूध, घी और मक्खन अपने या अपने बच्चोंके मसरफ़में लाती हैं, उन्होंने उसे निकाल बाहर किया और स्वयं रामजीकी धात्री और माता बन बैठे। पुत्रका नहलाना, धुलाना, खाना पकाना और खिलाना वह स्वयं करने लगे। सहायताके लिये एक नौकर भी रख लिया। छुटपनसे लेकर वयस्क हो जानेतक बराबर वह रामजीको अपने साथ—छातीसे लगाकर—सुलाते थे। उनका "राम" उनकी दृष्टिमें इस दुःख-मय, पाप-मय, और हाय-हाय-मय संसारका सर्व-श्रेष्ठ सुख था। रामजीको देखतेही

वह एक अद्वितीय और अनिर्वचनीय सुखका अनुभव करते, प्रसन्न-वदन हो जाते थे। रामको पढ़ानेका उन्होंने यथा शक्य बहुत सुन्दर प्रबन्ध कर रखा था। वह कलकत्ता विश्वविद्यलयकी प्रवेशिका परीक्षा पास कर द्वितीय-वर्ष-श्रेणीमें पढ़ रहा था। कालेजमें उसने अंग्रेज़ीके साथ संस्कृत ले रखी थी और घरपर गोपालजीके एक पुराने मित्र मौलवी साहब उसे फ़ारसी पढ़ाया करते थे।

ईश्वर-द्रोही गोपालजीका हृदय-सर्वस्व राम, स्वभावतः हिन्दू था, ईश्वरको माननेवाला था। स्वयं देवी-देवताओंमें विश्वास न रखते हुए भी, पुत्रके आग्रहसे, वह राम-मन्दिरमें भी जाते थे और काली-बाड़ीमें भी। कभी-कभी नास्तिक पिता और आस्तिक पुत्रमें "ईश्वर" को लेकर बड़ा सुन्दर विवाद हुआ करता था, जिसमें, विजयी होनेपर भी, गोपालजीको पराजय स्वीकार करनी पड़ती। परन्तु तब, जब पुत्र पिताके गलेमें हाथ डाल, कपोलसे कपोल सटाकर कहता था कि, "बाबूजी जबतक तुम 'राम राम' न

कहोगे मैं भोजन न करूंगा, राम हमारे भगवान् हैं।" ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेपर गोपालजी मुस्कराकर 'राम राम' कह कर कहने लगते कि, 'राम' तो मेरा दुलारा और प्यारा पुत्र है। भला 'राम राम' कहनेमें मुझे आपत्ति हो सकती है?

卐

मौलवी साहब

अभी कलतक कलकत्तामें जिस दंगेका ताण्डव नृत्य हो रहा था उसके आरम्भ होनेके पन्द्रह दिनों पूर्व गोपालजीके पुराने मित्र और रामजीके फ़ारसी-शिक्षक, मौलवी सदाअतुल्ला और ईश्वर-द्रोही गोपालजीमें "हिन्दू और मुसलमान" विषय पर ख़ासी बहस हुई। बहसका आरम्भ मौलवी साहबने इस प्रकार किया था—

"आपकी भिखारिन बेटी कैसी है?"

गो०—"भली-चङ्गी और प्रसन्न। क्यों?"

मौ०—"मुहल्लेके मुसलमान जानते हैं कि आपकी बेटी हिन्दू नहीं है।"

गो०—"तो—? इसका अर्थ ?"

मौ०—"इसका अर्थ तो मैं नहीं जानता, हाँ, लोग आपसमें इस बातकी सलाह कर रहे हैं कि उसे आपसे माँगकर फिरसे दीन इसलाममें मिला लें। मुसलमान अपनी औलादको हिन्दूके घरमें, हिन्दूकी तरह, नहीं देख सकते।"

"हा हा हा हा!" रूक्ष अट्टहास करते हुए ईश्वर-द्रोहीने कहा—"उस दिन मुसलमान कहाँ थे जब भिखारिन भूखों मर रही थी? उस दिन दीन इसलाम कहाँ था जब अपनेको मुसलमान कहनेवाले कुत्ते उसके पाक दामनको गन्दा करने पर उतारू थे? अरे यारो, बुग्ज़, शतानी, बदमाशी और लड़ाईका नाम दीन-इसलाम नहीं है। काहेको खुदा और मज़हबको बद-नाम करने पर कमर कसते हो?"

"यह बदमाशी नहीं है जनाब, इसे अपने मज़-हबीकी क़द्र करना कहते हैं।"

"इन्सानका मज़हब इन्सानकी क़द्र करना है। जिस धर्ममें आदमीकी इज़्ज़त नहीं, वह धर्म नहीं धोका है।"

"मुसलमानका धरम है मुसलमानकी क़द्र करना। जो मुसलमान नहीं, वह काफ़िर है।"

"ठहरिये!" नास्तिकने उत्तेजित होकर कहा—"किसीको काफ़िर समझना आदमीयतका अपमान करना है। वैसे तो मैं किसी भी धर्म और किसी भी ईश्वरको नहीं मानता, मगर—मगर......।"

"मगर??"

"मगर...अगर कोई अपनेको मुसलमान, ईसाई या कुछ और कह कर और मुझे 'हिन्दू' समझ कर अपमानित करना चाहे, तो; मुझसे बढ़कर कोई दूसरा 'हिन्दू' नहीं। वैसी हालतमें मैं बिक जाऊंगा, मगर 'हिन्दू' रहूंगा—मर जाऊँगा; मगर 'हिन्दू' रहूंगा। वैसी हालतमें अपमान 'हिन्दू' का नहीं, 'आदमी' का होता है। मैं आदमी हूं। मौलवी साहब! मेरी नज़रोंमें मज़हबकी उतनी ही इज़्ज़त है जितनी

पोशाकोंकी। लुङ्गी लगानेवाला धोती पहननेवालेको काफ़िर नहीं कह सकता। पगड़ी पहननेवाला तुर्की टोपी वालेको म्लेच्छ नहीं कह सकता। अपनी-अपनी पसन्द है। आप दीन इसलामको मानते हैं—लुङ्गी पहनिये; राम हिन्दू है धोती पहने। मैं कुछ भी नहीं हूं—आदमी हूं, जो जी में आयेगा पहनूंगा। पोशाकोंके लिये लड़ना मुसलमानपन नहीं, हिन्दूपन भो नहीं, गधापन है।"

ज़रा गम्भीर होकर मौलवी साहबने पूछा—

"कलकत्तामें अगर दंगा हो तो आप क्या करेंगे?"

"कमज़ोरोंकी तरफ़दारी, बे-गुनाहोंकी मदद करूंगा और बदमाशोंसे लडूंगा।"

"बदमाश कौन होगा?"

"जो लड़ाई छेड़ेगा। वह हिन्दू हो या मुसलमान, कोई चिन्ता नहीं।"

* * * *

जिस समय मौलवी और ईश्वर-द्रोहीमें बहस हो रही थी उसी समय मकानके भीतर भिखारिन—जिसे

अब लोग "नवाबज़ादी" कहकर पुकारते थे—और रामजीमें इस प्रकार बातें हो रही थीं।

"नवाबज़ादी!"

"नवाबज़ादीके मालिक—आक़ा!"

"मुझे मालिक क्यों कहती हो?"

"मुझे नवाबज़ादी क्यों कहते हो?"

"तुम नवाबज़ादी नहीं हो? तुम्हारे दादा नवाब नहीं थे?"

"तुम मेरे मालिक नहीं हो? तुमने मुझे पनाह नहीं दी है?"

"अच्छा भाई, तुम नवाबज़ादी नहीं, 'तुम' हो।"

"अच्छा भाई, तुम भी मालिक नहीं, 'तुम' हो।"

"तुम तरकारी लाने न जाया करो।"

"क्यों?"

"मछुआबाज़ारके मुसमलमान तुम्हें हिन्दूके घरसे निकालनेकी धुनमें हैं।"

"वाहरे निकालनेकी धुनमें हैं! अंगरेज़ीराज नहीं, नवाबी है?"

"अच्छा तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जातीं ?"

"तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते ?"

"मैं हिन्दू हूं और हिन्दू रहनेमें फ़ख्रसमझता हूं।"

"मैं भी हिन्दू हूं और हिन्दू रहनेमें फख्र समझती हूं। जिस धरममें बाबूजी ऐसे लोग हों और 'तुम' हो, वह धरम मेरी नज़रोंमें दुनियाके सब धरमोंसे बेहतर है।"

"दुनियाकी नज़रोंमें तुमने हमें मुसलमान बना दिया है।"

"और तुमने ? तुमने हमको हिन्दू नहीं बना दिया ? तुमने......।"

श्रीमती 'तुम' के मुख पर हाथ रखकर श्रीमान् 'तुम' ने कहा—

"चुप !"

श्रीमान् 'तुम' के मुखपर हाथ रख कर श्रीमती 'तुम' ने कहा—

"चुप !"

६

दंगेमें—

कलकत्ताके दंगेका तीसरा दिन था। वृद्ध गोपालजी अपनी उसी बठकमें उदास मुँह बैठे थे जिसमें रामजी और भिखारिनकी प्रथम भेट हुई थी। भिखारिन नवाबज़ादी भी गोपालजीके सामने कुर्सी पर बैठी थी। उसके मुखसे भी उदासी और अप्रसन्नता फूटी पड़ती थी।

"बेटी!" वृद्धने रुद्ध कण्ठसे कहा—"मेरा राम आय समाजका जुलूस देखने, केवल एक घंटेके लिये, गया था; मगर अभी तक नहीं लौटा। ज़रूर उस पर कोई-न-कोई विपत्ति पड़ी है, नहीं तो, बिना अपने बूढ़े बापके रामको चैन नहीं पड़ता।"

इसी समय किसीने दरवाज़ा खटखटाया। नवाबज़ादी उसे खोलनेके लिये उठी; मगर. बूढ़ेने रोका—"तुम न जाओ नवाबज़ादी, मुमकिन है कोई बदमाश हो। मैं ही जाता हूं।" दरवाज़ा खोलने पर गोपाल-

जीका नौकर नन्दन भीतर आया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह इतनी लम्बी-लम्बी साँसे ले रहा था मानों एक साँसमें भागता हुआ आया है।

वृद्धने पूछा—"क्या ख़बर है नन्दन? रामका कुछ पता चला?"

नौकर नीचे सिरकर चुपचाप खड़ा हो गया।

"बोलता क्यों नहीं रे, मेरा राम कहाँ है?"

नौकर रोने लगा। गोपालजीका चेहरा, नौकरकी हालत देखकर, काला पड़ गया। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों उनके ऊपर क्षण-भर बाद निश्चित वज्रपात होनेवाला है।

"नन्दन! नन्दन!! बोलता क्यों नहीं? वह कहाँ है?" नवाबज़ादीने रुद्ध कण्ठ और भयभीत हृदय होकर पूछा।

नन्दनने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—

"बाबूजी, राम भैयाको...।" इस बार भी वह बात पूरी न कर सका। अबकी ज़रा दपट कर गोपालजीने पूछा—"साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहता? बेवक़ूफ़।"

नन्दनने अपनी सारी शक्ति मुखमें एकत्र कर साफ़-साफ़ कहा—"उस दिन जब आर्य-समाजके जुलूसपर मुसलमानोंने धावा किया और हिन्दुओंको खूब पीटा तब राम भैयाको उनके एक मित्रने, जो अफीम चौरस्ते पर रहते हैं अपने घर पर रोक रखा। दूसरे दिन मुसलमानोंकी ज़्यादती बढ़ती देख उनके मित्र और वह, अनेक दूसरे हिन्दुओंके साथ. मुसलमानोंका सामना करनेके लिये निकले। उन लोगोंने कई जगहों पर मुसलमान गुण्डोंका सामना किया, उन्हें हराया और मार भगाया। आज सुबह राम भया आपसे मिलनेके लिये वहाँसे इधरको आ रहे थे, उसी समय एक मुसलमान गुण्डेने उनके पेटमें छुरा भोंककर उन्हें मार डाला। इसके बाद उनका क्या हुआ वह मुझे मालूम नहीं। इतनी ख़बर भी बड़ी मुश्किलसे मिली है।"

"उन्हें मुसलमानोंने मार डाला! उन्हें—उन्हें!!" कह कर नवाबज़ादी फूट-फूटकर रोने लगी। मगर गोपालजी गंभीर थे। उनकी आँखोंमें आँसू नहीं,

चिनगारियाँ थीं। क्षणभर बाद वह अपने स्थानसे उठे और नौकरसे बोले—

"घरमें जितने शस्त्र हों मेरे सामने लाओ!"

थोड़ी देरमें दो-तीन डण्डे, दो तलवारें और एक तमञ्चा गोपालजीके सामने नौकरने ला रखा! वृद्धने पहले तलवारको उठा कर दो-एक बार घुमा-फिराकर अन्दाज़ा। इसके बाद कपड़े पहनना आरम्भ किया। कपड़े पहनते-पहनते उनकी नज़र रोती हुई नवाबज़ादी पर पड़ी। उन्होंने कहा—

"बेटी, अब यह घर तुम्हारा है। मैं अपने रामकी तलाशमें जाता हूं। अगर मिला तो लौटूंगा, नहीं तो यही हमारी आख़िरी भेंट है।

गोपालजीकी ओर अश्रुपूर्ण, रक्त-नेत्रोंसे देखकर नवाबज़ादीने कहा—

"मैं भी चलूंगी।"

"तुम कहाँ चलोगी?"

"उन्हें ढूंढ़ने।"

"बड़ा मुश्किल काम है, नवाबज़ादी। तुम औरत

हो। मेरे रामको मेरे हिस्सेमें छोड़ दो। मैं ही ढूँढूंगा।"

"नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। जहाँ आप होंगे वहीं पर मैं भी होऊँगी, ठहरिये।"

नवाबज़ादी घरके भीतर गयी और थोड़ी देर बाद मर्दाने कपड़े पहन और हाथमें एक लम्बा छूरा लेकर वृद्धके सामने आयी। नवाबज़ादीके मर्दाने कपड़े वही थे जिन्हें रामजी पहना करता था। राम ही की तरह गोरा, लम्बी और सुन्दरी, नवाबज़ादीको पुरुष वेशमें देखकर और रामको स्मरण कर बूढ़े ईश्वरद्रोहीकी आंखोंके आंसू, बाढ़की नदीकी तरह उमड़ चले।

संसारसे बहुत दूर रहने वाले रामकी तलाशमें ईश्वरद्रोही और नवाबज़ादी, शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर, चल पड़े। उस समय वृद्ध गोपालजीके मुख पर वही भाव था जो किसी समय 'केसरिया-बाना' धारण करने पर राजपूतोंके मुख पर होता था—। नवाबज़ादीके बदन पर वही तेज था जो 'जौहर' के वक्त राजपूतनियोंके बदन पर दिखाई देता था!

७

"युद्धं देहि !"

वृद्धवीर गोपालजी और नवाबज़ादी उस गलीको प्रायः पार कर चुके थे कि पीछेसे ५-७ मुसलमानोंने उनपर धावा किया। "अली! अली!! अल्लाह! अल्लाह!!! मारो सालोंको। दोनों-के-दोनों हिन्दू हैं— काफ़िर हैं!"

हाथका डण्डा सभालकर और नवाबज़ादीको पीछे कर गोपालजी खड़े हो गये और डपट कर उन गुण्डोंसे कहने लगे—

"हत्यारो; 'अली अली' और 'अल्लाह अल्लाह' क्यों पुकारते हो? 'शैतान शैतान' का नारा लगाओ! ख़ूनका प्यासा ख़ुदा शैतान है, ईश्वर नहीं। बदमाश पीछेसे धावा करते हैं! खड़े हो जाओ सामने और एक-एक कर निपट लो। तुम सात हो हम दो। तुममें से एक भी जीता रह जाय तो कहना।"

लम्बी तलवारको बग़लसे खींच बूढ़ा ईश्वर-द्रोही

शेरकी तरह उन गुण्डों पर टूट पड़ा। गुण्डे भी सावधानीसे सामना करने लगे। दोनों ओरसे प्रहार-पर-प्रहार होने लगे। देखते-देखते उस बूढ़े शेरने तीन मुसलमानोंको ज़मीनपर सुला दिया। इसी समय उनके पीछेसे आवाज़ आयी—

"मरी ! मरी बाबूजी !!"

गोपालजीने पीछे घूमकर देखा दो मुसलमान नवाबज़ादीके कोमल शरीर पर बड़ी निर्दयतासे छुरे चला रहे थे। जबतक वह वीर उस अबलाकी सहायताके लिये आगे बढ़े तबतक उन दुष्टोंने उसका काम तमाम कर डाला ! गोपालजी झपट कर नवाबज़ादीके पास पहुंचे। उसकी दोनों आँखें खुली थीं, पर, उनमें दर्शन-शक्ति नहीं थी। इसी समय एक मुसलमानोंने, पीछेसे, गोपालजीका बग़लमें लम्बा छुरा भोंक दिया। वह 'हाय !' करके घूम पड़े। उन्होंने तलवारका एक ऐसा सच्चा हाथ मारा कि वह मुसलमान भी दो होकर नाचने लगा। गुण्डोंमें भगदड़ पड़ गयी !

गोपालजीको गहरी चोट लगी थी। उनकी अँत-

ड़ियाँ बाहर निकली आ रही थीं। उन्हें भीतरकी ओर ठेलकर बूढ़ेने उसी घाव पर अपने दुपट्टेको कस कर बाँधा और विक्षिप्तकी तरह आगे पैर बढ़ाया!

कुछ दूर चलनेके बाद गली पार हो गयी, सड़क मिली। सड़क पर एक सार्जेण्टके साथ ५-७ सिपाही खड़े थे। उन्होंने उस वृद्ध वीरको रोककर पूछा—

"कहाँ जा रहे हो?"

"अपने रामको खोजने।" लड़खड़ाती आवाज़से गोपालजीने कहा—"आज अगर मेरा राम न मिला तो कलकत्ताके सारे मुसलमानोंको मार डालूंगा। मसजिदोंको भस्म कर दूंगा। बेटा राम! प्यारे राम!!"

घाव बहुत गहरा था। वृद्ध वहीं गिर कर ढेर हो गया!

उस सड़कके आस-पासकी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंमें बहुत देरतक ईश्वर-द्रोही गोपालजीके अन्तिम शब्द गूँजते रहे—

"बेटा राम! प्यारे राम!!!"

उस दलमें घोर नास्तिक, आर्यसमाजी, सनातनी और घोर सनातनी सब थे;—याने चश्मेके साथ काकुल, पायजामेके साथ जनेऊ, दाढ़ीके साथ त्रिपुण्ड तथा मुण्डित शिरके साथ काषाय वस्त्र था। हिन्दू-मुसलिम वैमनस्यकी चर्चा चल पड़ी थी, बहुत गरम बहस हो रही थी। नास्तिकजीने कहा—

"अपनी जातिके ढोंगहीके कारण हम मुसलमानों

की जूतियां खाते हैं। जितने झूठे, ढोंगी और 'हृदय आन मुख आन' सिद्धान्तके समर्थक हमारी जातिमें हैं उतने संसारमें और कहीं नहीं। उस दिन—हा, हा, हा, हा! उस दिनकी घटना कभी भूल सकती है! क्यों भाई? (आर्यसमाजीसे) तुम्हें याद है या भूल गये? वह—वह महामहोपाध्यायवाली बात!"

आर्यसमाजीजीने नाक सिकोड़ते हुए कहा—

"मारो गोली ऐसे नालायक़ महामहोपाध्यायको। ऐसे नीचोंकी चर्चा करना भी पाप है। न जाने किस दिन इनके हाथोंसे समाजका पिण्ड छूटेगा।"

घोरसनातनी (संन्यासी) महोदय अबतक चुप थे, पर, अब उनसे चुप न रहा गया, बोले—

"कुछ घटनाकी चर्चा भी करो! तुम सब तो पूरे नास्तिक हो गये। किस महामहोपाध्यायकी खिल्ली उड़ाना चाहते हो? किसीका नाम भी लो—किसीके अपराधका वर्णन भी हो!"

नास्तिक—हा, हा, हा, हा! उसे आप अपराध मानेंगे ही नहीं, ब्राह्मण महामहोपाध्यायसे कभी कोई

अपराध हो सकता है ? फिर भी सुनिये। परसोंकी बात है। महामहोपाध्याय पण्डित विधाताहरि-शास्त्री—शहरके उस एकान्त भागमें—घूम रहे थे। एकाएक दो मुसलमान नवयुवक उनके ऊपर टूट पड़े ! क्यों भाई ?

आर्य०—अरे फिर देखने लायक़ था वह दृश्य ! शास्त्रीजीका पग्गड़ पश्चिम दिशाकी ओर दौड़ पड़ा तो डण्डा दक्षिणकी ओर। और बेचारे शास्त्रीजी ! हा हा हा हा ! इतनी मोटाई और ऐसी कायरता !! छिः !!!

नास्तिक—मुसलमान युवक शायद शौचादि कर्मके लिये उधर गये थे। शास्त्रीजीको चारोख़नेचित्त देखकर उनमेंसे एकने उन (शास्त्री) का मुख फाड़कर उसमें अपने बधनेका पानी डाल दिया। बिलकुल बैलकी तरह शास्त्रीजी उस जलको पान कर गये !

सना०—यह ख़बर तुम्हें कैसे मालूम हुई ?

आर्य०—अरे हम सब वहीं थोड़ी दूरपर खड़े तमाशा देख रहे थे !

घोर सना०—धिक्कार है! तुमपर हज़ार बार धिक्कार है!! तुम हिन्दू हो! तुम्हारी आंखोंके सम्मुख एक ब्राह्मण विद्वानका धर्म नाश किया गया और तुम नीरस वृक्षकी तरह नीरव और निश्चल खड़े रह गये!

नास्तिक—हम जो चुप रह गये उसमें भी कुछ रहस्य था। हमें यह देखनेकी इच्छा थी कि दूसरोंको व्यवस्था देनेवाले शास्त्री स्वयं क्या करते हैं? कौनसा प्रायश्चित्त करते हैं?

आर्य०—(घोर सनातनीसे) मगर दादा! सब हज़म हो गया। शास्त्रीजी पचा गये! उस दिनसे आज-तक किसी देवताके दर्शनको भी नहीं गये, प्रायश्चितकी कौन कहे! यह है हमारा हिन्दुत्व! जब यही हालत है तब मुसलमान-हिन्दुओंको हिन्दू बनानेसे ये पग-ड़ीवाले क्यों मरे जाते हैं? इनके सनातनधर्मकी नानी क्यों मरने लगती है? घरमें चाहे जो कर लें, पर बाहर पवित्रताकी मूर्ति बने फिरेंगे! यही मनुष्यता है?

नास्तिक—भाई कोई झूठ माने या सच ; मगर, मैं तो यही कहूंगा कि कुछ पुराने शास्त्रियोंकी कृपासे ही हमारा समाज नरककी ओर जा रहा है। उन्हींके हृदयके क्षुद्रत्वसे हम आये दिन मुसलमानोंके हाथों पीटे जाते हैं।

घोर सना०—चुप भी रहो ! हमारे यहाँ होने दो दंगा ! हम लोग एक-एक मुसलमानको पीसकर पी जायंगे !

नास्तिक—शर्म कीजिये, आप संन्यासी हैं। संन्यासीके मुखसे नर-हत्याकी चर्चा ! आप मुसलमानको पीसकर पी सकते हैं पर खींचकर गले नहीं लगा सकते ?

सनातनी—हमारे मुहल्लेमें तो केवल चार मुसलमान हैं, वही तम्बाकूवाले !

एक दूसरे सनातनीने कहा—

"उस तम्बाकूवालेकी लड़कीसे मैं ही निकाह पढ़ाऊँगा—वह मेरे ही लायक़ है।"

"अरे बूढ़ोंके रहते तुम उस नव-यौवनापर अधि-

कार कैसे करोगे ? वह तो सालोंसे मेरी आंखोंमें गड़ी हुई है। ज़रा झगड़ा होने दो, फ़ौरन उसे अपने घरकी...!"

सनातनीजीकी बातें सुनकर मारे क्रोधके घोर नास्तिककी आंखें लाल हो गयीं। वह तड़पकर बोले—

"ढोंगियो, इतना ही बल खुलकर क्यों नहीं दिखाते ? मुसलमानोंकी स्त्रियोंसे खुले आम शादी करनेसे क्यों भागते हो ? और उनको अपनानेवालोंका बहिष्कार क्यों करते हो ? दंगेमें किसी अबलाके सतीत्वपर आक्रमण कर सनातनधर्मकी नाक बचाओगे ? 'बूड़ि न मरहु धर्मव्रत धारी !' तुम्हारे ही ऐसे हिन्दू आवश्यकताके समय औरतोंके घाँघरेमें छिपते हैं—छिः !"

२

मुसलमान

नास्तिकजीका स्वागत दोनों दलोंमें होता था।

हिन्दूओंमेंसे कोई तो नास्तिकराजको पागल समझता, कोई जासूस, कोई पतित, कोई दार्शनिक और कोई केवल भला आदमी। उधर मुसलमान उसे नये ख़यालका हिन्दू समझते थे। मगर, सब नहीं; कोई-कोई मुसलमान तो उसे ख़तरानक आदमी समझते थे।

रहमानखांसे नास्तिककी मित्रता थी। दोनों क्लासफ़ेलो रह चुके थे। अक्सर रहमान नास्तिकके और नास्तिक रहमानके घर आते-जाते थे। उस दिन सनातनधर्मके समर्थकोंसे क्रुद्ध होकर जब नास्तिकजी वहाँसे हटे तो सीधे रहमानके यहाँ पहुंचे। पर हाय! वहाँ भी वही चर्चा!! मुसलमानोंको एक मण्डली हिन्दू-मुसलिम-प्रश्नपर आपसमें झगड़ रही थी। नास्तिकको देखकर किसीके अब्रूमें बल आने लगे, किसीकी नाक चढ़ने लगी, किसीकी नफ़रतभरी नज़र नास्तिकको देखकर झुक गयी। पर, रहमान प्रसन्न था। वह अपने मुसलमान मित्रोंसे कहने लगा—

"अच्छा हुआ पण्डितजी आ गये, आप बड़े ही नेक-दिल और इन्साफ़-पसन्द आदमी हैं। आपका नाम

है पण्डित विशनपरसाद (? विष्णुप्रसाद) आप 'खुदा' और 'ईश्वर' को दो नहीं समझते। (नास्तिकसे) बैठिये पण्डितजी इधर मज़ेमें.........।"

नास्तिकजी अभी बैठ ही रहे थे कि एक मुसल्मानने कहा—

"केवल इनके 'खुदा' और 'ईश्वर' को एक समझनेसे क्या होता है, सब मुसल्मान-हिन्दू ऐसा समझें तब न।"

एक दूसरे बुड्ढे मौलवी बोले—

"म्यां, हिन्दू हमें कुछ समझते भी हैं? उन्हें फ़ख़्र है कि वे बाईस करोड़ हैं फिर बाईस, सातकी पर्वा क्यों करेगा?"

तीसरा मुसल्मान युवक बोला—

"ज़रूरत पड़नेपर बाईस करोड़ चींटियोंके लिये हाथीका एक बच्चा ही बहुत है। हिन्दू चींटियाँ हैं और मुसलमान हाथी!"

रहमानने तमककर कहा—

"ग़लत! हिन्दू इतने कमज़ोर नहीं जितना कि

तुम समझते हो। हाँ, उनमें एका नहीं हैं—इसीसे उन्हें जो चाहता है वही बुज़दिल, डरपोक और कायर कह देता है। अगर हिन्दुओंमें एका हो जाय और एक आवाज़से (ख़ुदा ऐसा दिन न दिखाये) हिन्दू-जाति मुसलमानोंकी 'हस्ती' मिटाना चाहे तो हमारी मुश्किलातोंका ख़ातमा होना मुश्किल हो जाय।"

दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए मौलवीने पुनः कहा—

"चुप करो! हिन्दू हमारा सामना कर सकते हैं? अभी उस सालके बलवेकी बात भूल गये। उस बार मुसलमानोंने हिन्दुओंके साथ क्या-क्या नहीं किया? पर हिन्दू भी कुछ कर सके? जबतक हमारा ख़ुदा मिहर्बान है तबतक हम हिन्दुओंको चींटियां ही समझेंगे! आसार बुरे ही नज़र आ रहे। न जाने किस दिन यहाँके हिन्दू-मुसलमानोंमें लड़ाई हो जाय। अबकी देखना—सहारनपुर और मुलतान मात न हो जायं तो कह देना।"

बहुत देरसे चुप नास्तिकजीने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—

"अबके जुनूंमें फ़ासला, शायद न कुछ रहे।
दामनके चाक और, गरेबांके चाकमें!"

समझे मौलवी साहब?

मौ०—इसके मानी?

नास्तिक—इसके मानी हैं—

"जिसे शब 'आग' सा देखा दहकते,
उसे फिर 'ख़ाक' हैं पाया सेहर तक!"

सहारनपुर या मुलतानके क़साई मुसलमानों या राक्षस हिन्दुओंको बहिश्त या स्वर्गमें स्थान नहीं मिलेगा। खुदा—अगर वह हो—किसीकी ज़्यादती नहीं देख सकता।

नवयुवक मुसलमानने कहा—

"ज़्यादती तो आपहीकी ओरसे होती है। इसी शहरकी बात लीजिये। इधर महीने भरसे हिन्दू लोग राम-मन्दिरमें उसी समय आरती करते हैं जब हम लोग मसजिदमें नमाज़ पढ़ने जाते हैं। यह जान-बूझकर छेड़खानी नहीं तो क्या है?

नास्तिक—मैंने माना हिन्दू ग़लतीपर हैं, पर, उस

ग़लतीके लिये खूँ-रेज़ी करना कहाँतक दुरुस्त होगा, यह कौन कह सकता है? हिन्दुओंके घंटेकी आवाज़को सुनी-अनसुनी कर अपने खुदाको याद करना अच्छा है या सिर-फोड़ौव्वल कर मसजिद और मन्दिरमें किसी तीसरे हाथसे ताले लगवाना? अगर कांसेके घण्टेकी आवाज़ खुदाकी यादको आपके दिलोंमें नहीं आने देती तो चाँदीके घण्टे (रुपये) की आवाज़ तो आपके अल्लाहको ख़त्म कर देगी। आप मसजिदमें नमाज़ पढ़नेके लिये आते हैं या घंटेकी आवाज़ सुनने? इतना कमज़ोर खुदा है—ऐसा नाज़ुक ईमान!

नास्तिक मित्रका समर्थन करते हुए रहमानने कहा—"मुझे तो मन्दिर-मसजिदमें कोई फ़र्क़ नहीं दिखाई पड़ता। सब उसीका जल्वा है। मन्दिर हो या मसजिद—'सरापामें उसके नज़र करके तुम, जहाँ देखो अल्लाह अल्लाह है।' केवल मसजिदके दायरेमें खुदाको क़ैद करना इन्सानकी हिमाक़त है, बेवकूफ़ी है।"

रहमानकी बातें बूढ़े मुल्लाको न रुचीं, वह तस्बी घुमाते और लाठी टेकते हुए वहाँसे नौ-दो-ग्यारह हो गये ।

३

दंगा

मज़हबका टुकड़ा बीचमें फेंक कर कुत्ते लड़ गये और लगे खुदाकी खुदाईकी छीछालेदर करने— ईश्वरके अस्तित्वपर दाँत गड़ाने ! झगड़ा शुरू कैसे हुआ ज़रा उसका इतिहास भी सुनिये ।

रहमान जिस महल्लेमें रहता था उसमें उसके परिवारको छोड़ और सब हिन्दू थे। उसकी एक तम्बाकूकी दूकान थी जो बहुत मज़ेमें चलती थी। हिन्दू-मुसलमान दोनों ग्राहक थे। तम्बाकू पीनेवाले हिन्दू रहमानसे कभी यह नहीं पूछते थे कि तुम उसमें गङ्गाजल मिलाते हो या बंधना-जल ? तम्बाकूमें छूत कहाँ ? छूत-अछूतका प्रश्न तो आदमीमें होता है। रहमानके तीन छोटे भाई और थे, तीनों युवक थे पर

अविवाहित। पचीस वर्षका मुसलमान युवक अविवाहित रह सकता है पर बारह वर्षका हिन्दू बालक दो बीबियोंका फलाहार कर लेता है! रहमानकी स्त्रीका नाम था ज़ोहरत। वही घरका काम सँभालती थी। उसे कभी-कभी दूकानपर भी बैठना पड़ता था। जब वह दूकानपर बैठती तब न जाने कितने हिन्दू युवक और अधेड़ तम्बाकू या सुर्ती लेनेके लिये आते। कोई उसका कर-स्पर्श कर तर जाता तो, कोई उसके एक दृष्टि-पातसे गलकर बर्फ़ हो जाता। कोई-कोई 'पण्डित' सुर्ती लेनेके व्याजसे घण्टों वहीं खड़ा रह जाता। इस तरह ज़ोहरतपर न जाने कितने हिन्दू फ़िदा थे।

रहमानका रहन-सहन ठीक हिन्दुओं-सा ही था। वह स्वयं गोश्त न खाकर गायका दूध पीता था। इसीलिये उसके यहाँ बराबर एक-दो गाएं रहती थीं। उस दिन रहमानकी गाय बहककर कहीं खो गयी थी। स्त्रीको दूकानपर बैठाकर चारों भाई गायकी तलाशमें निकले थे। बड़ी दौड़-धूपके बाद रहमानको उसकी गाय मिली। उसे चुमकारते हुए वह कहने लगा—

"ऐसा कहाँ भाग जाती हो? देखो तो, कितनी देरसे तुम्हारे लिये परीशान हो रहा हूं। तुम्हारी यही हालत रही तो किसी-न-किसी दिन तुम किसी क़साईके हाथमें पड़ जाओगी। फिर चलो! पगली कहींको !!"

गायको साथ लेकर रहमान चला। जिस मुहल्ले से वह जा रहा था उसमें हिन्दुओंकी ही बस्ती ज़्यादा थी! हिन्दू सभी जगह मक्खियोंकी तरह ज़्यादा ही होते हैं। एक स्थान पर कुछ छोकरे खड़े थे, उनकी नज़र रहमान और गाय पर पड़ी। उन्होंने समझा, कोई क़साई उनकी "गो-माता" को लिये जा रहा है। फिर क्या था! हिन्दू-मुसलमानोंका विवाद चल ही रहा था। उत्तेजित लौण्डोंने रहमानको घेर लिया। सवाल पर सवाल होने लगे! हज़ार बार अभागे रहमानने कहा कि मैं कसाई नहीं, यह मेरी गाय है, मैं इसका दूध पीता हूं; पर, किसीने कुछ न सुना! देखते-देखते एक बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। एक बूढ़े हिन्दूने कहा—

"देखते क्या हो छीन लो गाय! मारो सालेको!"

पागल हिन्दू, विवेक-शून्य हिन्दू, रहमानपर टूट पड़े। उसे इतना पीटा कि वह जहाँ-का-तहाँ ठण्ढा हो गया। इस प्रकार 'युद्ध-पर्व' के मस्तकपर हिन्दुओंने श्रीगणेश लिखा !!!

४

अन्धा जोश

बिजलीकी तरह यह ख़बर शहरभरमें दौड़ गयी! दूसरे मुहल्लेके हिन्दुओंने पहले अपने बचावका प्रबन्ध—असबाब समेटना, घरमें कुछ पत्थर एकत्र करना, स्त्रियोंको तालेमें बन्द करना और बच्चोंका रोना बन्द करना—आरम्भ किया! उधर मुसलमानोंने रहमानकी मृत्युका बदला लेनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। घण्टे भरके भीतर ही दो हज़ार मुसलमान उस महल्लेमें घुस गये जिसमें रहमानकी हत्या हुई थी। मुसलमानोंके पास सब प्रकारके शस्त्र और वृद्ध, युवक, बालक, सब प्रकारके सैनिक थे। अब कौन सामना

करने आता है। जिसके द्वारपर रहमानकी गऊ पायी गयी उसके घरका दाना-दाना लूट लिया गया। उस घरके मर्द तो मुसलमानोंको देखते ही काफ़ूर हो गये—रह गयीं बेचारी स्त्रियाँ! उनमेंसे किसीके गर्भ-मेंसे बच्चा निकालकर ज़िबह किया गया, किसी एक स्त्रीके साथ बीस-बीस राक्षसोंने बलात्कार किया, किसी सुन्दरीका कपोल दाँतोंसे काट लिया गया, किसी नवयौवनाके स्तन छुरेसे उतार लिये गये!

खुदाके नामपर इतने गुनाह करनेके बाद मुसलमानोंकी नज़र रहमानकी गऊपर पड़ी, इसीके लिये मुसलमान रहमान मारा गया! हरामज़ादी गऊ! ज़िबह कर डालो!! देखते-देखते अभागिनी गऊके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। वहाँ पर जितने मुसलमान थे सबने एक-एक टुकड़ा माँस लेकर हिन्दुओं को ढूढ़ना आरम्भ किया। उस समय जहाँ भी हिन्दू दिखाई पड़ते—खूब पीटे जाते और अन्तमें गोमांससे अपवित्र किये जाते! पर उक्त गोहत्याका दोष किस पर है? कोई बतायेगा?

*　　*　　*　　*

नास्तिकजीको ज्योंही दंगेकी ख़बर मिली त्योंही दौड़े हुए रहमानके घर पहुंचे। उन्हें ज़ोहरतके सतीत्व की चिन्ता थी—सनातनधर्मियोंका भय था! अभागिनो ज़ोहतरको अपने पतिके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं था। वह दूकानपर बैठी तम्बाकू बेच रही थी। नास्तिकजीको देखकर मुस्कराती हुई बोली—

"वह नहीं हैं। घरपर कोई नहीं है। सब उस 'भूरी' को खोजने गये हैं। मुई न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी!"

स्त्रीकी सरलतापर रोते हुए नास्तिकने कहा—

"बहन, तुम अभी मेरे साथ चलो, नहीं तो, तुम्हारी इज़्ज़त न बचेगी। हिन्दू-मुसलमानोंमें तुम्हारी भूरीके लिये दङ्गा हो गया। जानती हो इस मुहल्लेके हिन्दू तुम्हें अच्छी नजरसे नहीं देखते।"

जोह०—वह कहाँ हैं? भूरीका क्या हुआ? साफ कहिये।

नास्तिक—पहले मेरे घर चलो। वक्त नहीं है। ईश्वर न करे—अगर तुम्हारा अपमान होगा तो मैं मर जाऊँगा।

उसी समय अनेक हिन्दू हाथमें लाठियां लिये रहमानकी दूकानकी तरफ़ झपटे आते दिखाई पड़े। ज़ोहरतको लेकर नास्तिकराय जबतक चलनेको तैयार हुए तबतक पचीस हिन्दुओंने, जिनका नायक वही सनातनी था, रहमानकी दूकान घेर ली। नास्तिकने सनातनीसे कहा—

"यहाँ क्यों आये हो?"

सना०—लूटेंगे साले म्लेच्छको। हटो, तुम इस बीचमें न पड़ो!

नास्तिक—ज़रा विचारसे भी काम लो भाई! तुम यह क्या करने जा रहे हो?

एक हिन्दू—मुसलमानोंने हिन्दुओंको लूटा है। अस्तु हम भी उन्हें लूटेंगे। आप हिन्दू नहीं हैं तो हट जाइये। हमारे बीचमें मत पड़िये।

नास्तिक—परिणामकी ओर देखो ! अभी यदि मुसलमानोंका दल इस मुहल्लेपर धावा करेगा तो तुम्हारे पैर उखड़ जायेंगे। उस समय तुम्हारी क्या दशा होगी ?

सब—तू कायर है तो भाग हमें क्यों रोकता है ? हम लोग धर्मके नामपर मर-मिटने को तैयार हैं। सीधेसे जा नहीं तो.........

लाचार होकर नास्तिकने ज़ोहरतका हाथ पकड़कर कहा—

"चलो बहन चलें। ये अभागे राक्षस हो गये हैं ?"

सनातनीने कहा—

"उसे कहाँ लिये जा रहे हो ?"

गरजकर नास्तिकने उत्तर दिया—

"अपने घर। सच्चा हिन्दू पर-स्त्रीको अपनी माँ-बहन समझता है। मेरे जीतेजी किसकी मजाल जो ज़ोहरतकी ओर आँख उठा सके। हटो !"

रास्ता साफ़ हो गया—हिन्दू-हृदय पाषाण हो

जानेपर भी स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा नहीं भूल सकता, क्योंकि "सतीत्व" शब्दकी सृष्टि पहले-पहल हिन्दुओंने ही की थी।

* * *

नास्तिक अधिक दूर नहीं जा सका, गलीके नुक्कड़पर ही उसकी मुसलमानोंके एक दलसे भेंट हुई। वह दल-हिन्दुओंको लूटनेके लिये आ रहा था! नास्तिकको देखकर दलका नेता चिल्लाया—

"काफ़िर! मारो!! छीन लो उस औरतको—हां बहादुरो! या अली!"

ललकारकर नास्तिकने कहा—

"ख़बरदार पागल न हो जाना! स्त्री पर हाथ न उठाना—यह तुम्हारी बहन है!"

एक मुस०—वाहरे! बहन है? बहन हो तेरे बापकी, इस पटाख़ेको हमलोग जोरू बना सकते हैं। (ज़ोहरत) से इधर आओ मेरी जान!

तीव्र स्वरसे ज़ोहरतने कहा—"ज़बान सम्हालकर बोलो! मैं भी मुसलमान हूं।"

"हा हा हा हा!" एक मुसलमान गुण्डेने कहा "खूब पढ़कर आयी है। कैसा बहाना निकाला है। फ़ौरन् मुसलमान बन गयी। मुसलमान हो सही—तब तो और भी अच्छी बात है—भिड़ जाओ हमारी छाती से।"

क्षुब्ध नास्तिकने कहा—देखो, हमें जाने दो, जो कुछ कहना-सुनना हो मुझसे कहो-सुनो। मेरी बहन को बेइज़्ज़ती क्यों करते हो? सबकी माँ-बहन..."

मुसलमानोंके पास काफ़िरकी बात सुननेका वक्त् नहीं था। सब ज़ोहरतपर टूट पड़े! उसका रोना-चिल्लाना और अपनेको मुसलमान कहना बेकार गया! यह दशा देखकर नास्तिककी आँखोंमें खून उतर आया। उसने अपने डण्डेसे उस दलके नायक पर प्रहार किया। देखते-देखते सैकड़ों मुसलमान उस अकेले व्यक्ति पर टूट पड़े और क्षण भरमें उन राक्षसोंने खुदाकी उस सच्ची मसजिदको गिराकर धूलमें मिला दिया!

इसके बाद? इसके बाद ज़ोहरतकी दुर्दशा होने

लगी। अन्धे मुसलमानोंने पागलोंकी तरह ज़ोहरतके साथ अत्याचार किया। नास्तिककी मृत्युके घंटे-भर बाद ज़ोहरत भी ज़बरदस्ती मार डाली गयी!

ऐसे अन्धे—खुदाको पूजते हैं या शैतान को

५

खुदाके सामने

दंगेमें मरे हुए हिन्दुओं और मुसलमानोंकी आत्माएं फ़रिश्तों या यम-दूतोंके साथ खुदा या ईश्वर के सम्मुख पहुंचाई गयीं! हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंने देखा कि खुदा या ईश्वरका घर न तो मसजिद की तरह था और न मन्दिर या चर्चकी तरह। अपनेको एक हाकिमके इजलासपर देखकर दोनों दलवाले चकराये! मुसलमानोंने फ़रिश्तोंसे पूछा—

"क्या यही खुदा है?

हिन्दुओंने यमदूतोंसे पूछा—

"क्या यही परमेश्वर हैं?"

परमेश्वरने मुस्कराकर कहा—"तुम मुझे नहीं

पहचान सके। अगर तुममेंसे किसीने मुझे पहचाना होता तो तुम्हारे बनाये हुए घरों (मसजिदों, मन्दिरों) और तुम्हारी बनायी हुई मूर्तियोंके लिये मेरे घरों और मेरी मूर्तियों (मनुष्यों) का नाश न किया जाता। तुम सब काफ़िर हो, म्लेच्छ हो, राक्षस हो, शैतान हो। उधर हटो! तुम्हारे लिये दोज़ख़की आग घबरा रही है—वहीं जाकर जलो। तुम्हारे लिये नरककी यातनाएँ व्यग्र हैं, तुम उन्हींके गले लगो! इस बहिश्तमें केवल तीन व्यक्तियोंके लिये स्थान है। उनके नाम हैं—

विष्णुप्रसाद (नास्तिक), रहमान और ज़ोहरत।

हमारे गाँवके ज़मीन्दार मुसलमान हैं। गाँव न तो बहुत बड़ा है और न छोटा ही। पांच सौ घर हैं, दो हज़ार बाशिन्दे। गत मर्दुमशुमारीमें हिन्दुओंकी संख्या सात सौ थी और मुसलमानोंकी तेरह सौ। ज़मीन्दार अली अहमदख़ाँके घरके सामने, बादशाही ज़माने की एक पुरानी और पुख़्ता मसजिद है। ख़ुदाके बन्दे वहीं दुआ मांगा करते हैं। मन्दिरोंकी तादाद पचासोंसे अधिक है, पर, उनमेंसे दो-चारको छोड़ बाक़ीकी हालत बहुत ख़राब है।

गांवका इन्तज़ाम दो-तीन सालसे अली अहमद-ख़ांके हाथमें है। इससे पहले उनके बूढ़े, ईमानदार और शरीफ़-तबीयत बाप स्वर्गवासी ख़ुदायार खां गाँवके शासक थे। ख़ुदायार खांके शासनकालमें गांवमें शान्ति और सुखकी तूती बोला करती थी। उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखा करते थे। कारण, उनमें मुसलमानियतसे अधिक आदमीयत थी। वे धर्मान्धतासे इन्साफ़को अधिक पसन्द करते थे। उन्हींके व्यक्तित्वसे गत असहयोग या ख़िलाफ़त आन्दोलनमें हमारा गांव आदर्श बना हुआ था। मगर, उनकी तबीयत, उनका इन्साफ़ उन्हींके साथ क़ब्रमें दफ़न हो गया। उनके पुत्र अली अहमद खाँ किसी दूसरी धातुसे बने हैं। वह उच्छृङ्खल हैं, कट्टर हैं, मुसलमान हैं। यहाँ "मुसलमान" का अर्थ उस प्राणीसे है जिसके व्यक्तित्वको अपनेको हिन्दू कहने वाले लोग सन्देह, घृणा और भयकी दृष्टिसे देखते हैं।

अली अहमदके राज्यमें इन्साफ़ तो दूर, अक्सर

ज़ुल्म हुआ करते हैं। अब गाँवकी बहन-बेटियाँ घरके बाहर निकलनेमें आनाकानी करती हैं। क्योंकि ज़मीन्दार बाबू उन्हें अपनी बहन-बेटियाँ न समझ भोग्य-सामग्री समझते हैं। अब टूटे-फूटे मन्दिरोंकी हालत और भी नाज़ुक हो गयी है। क्योंकि, मुसलमानोंके छोकरे भगवान शंकरके सिरपर अक्सर पत्थर बरसा जाया करते हैं। कोई सुननेवाला नहीं, कोई हिन्दुओंका पुर्साहाल नहीं। अगर कोई ज़मीन्दारके यहाँ शिकायत लेकर जाता है तो न्यायकी जगह गालियाँ और फिटकार पाता हैं। यही कारण है जो अनेक हिन्दू दूसरे गाँवोंमें जा बसे और अनेक जानेकी तैयारी कर रहे हैं।

२

गाँवसे आधे कोसके फ़ासलेपर एक छोटासा जङ्गल है। हम लोग उसे "पलाशवन" कहा करते हैं। उसमें आम, जामुन और नीमके दस-बीस वृक्षोंको

छोड़ बाकी पलाशके पेड़ हैं। पलाशवन भी अली अहमदख़ाँ की सम्पत्ति है।

उसी वनमें उनकी फूसकी छोटी सी झोपड़ी है जिन्हें गाँववाले "परमहंस बाबा" कहते हैं। परमहंस-जीकी अवस्था क्या है यह कोई नहीं जानता। गाँवका बूढ़ा-से-बूढ़ा आदमी, अपने लड़कपनसे ही, उनको एक ही रूप और अवस्थामें देख रहा है। अधिकतर हिन्दू, और कुछ पुराने मुसलमान भी, उनको पहुंचा हुआ सिद्ध मानते हैं। कितने हिन्दू और मुसलमानोंके असाध्य रोग उनके आशीर्वाद या एक चुटकी धूलके प्रसादसे अच्छे हो चुके हैं। परमहंस बाबा गोरे रंग, गठीले बदन और लम्बे क़दके हैं! आस-पासके दस-बीस गाँवोंमें उनके बराबर कोई दूसरा लम्बा पुरुष नहीं दिखाई पड़ता। उनकी लम्बी दाढ़ी और सिरके बड़े-बड़े बाल बरफ़की तरह धवल और मक्खनकी तरह चिकने हैं। चेहरे पर ख़ून बरसा करता है।

परमहंसजी पूरे परमहंस हैं। जात-पांत बिलकुल नहीं मानते। दिन-रातमें एकबार भोजन करते हैं।

आस-पासके पाँच सात गांवोंमेंसे किसी एक गांवमें जाकर, पांच घरोंसे, "मधुकरी" माँगते हैं। रूखा-सूखा, भला-बुरा, खाद्य-अखाद्य जो भी मिल जाता है, उसे लेकर वनके निकट बहनेवाली सावित्री नदीमें पहले डुबो देते हैं, और फिर, वहीं भगवानका स्मरण कर उसे ग्रहण करते हैं।

एकबार हमारे गांवके कुछ मुसलमानों और हिन्दुओंमें परमहंसजाके मांस खाने-न-खाने की बात लेकर बहस हो गयी। मुसलमानोंका कहना था कि वह मांस खाते हैं और हिन्दू कहते थे कि कदापि नहीं खाते। विवाद एक मुसलमानके दरवाज़े पर हो रहा था। संयोगसे उसी वक्त परमहंसजी मधुकरी मांगने के लिये वहीं आये। जिस मुसलमानका घर था उसने हिन्दुओंसे कहा कि—"तुम लोग चुपचाप देखो हम परमहंसको गोश्त देते हैं।" परमहंसने मुसलमान गृहस्थके दरवाज़े पर "नारायण" की आवाज़ दी। वह मुसलमान घरमेंसे तश्नरीमें कुछ पके चावल और गोश्तके टुकड़े ले आया और उन्हें

परमहंसजीके झोलीमें डाल दिया। परमहंसजी आगे बढ़े और चार घरोंसे कुछ और सामग्री माँगकर आश्रमकी ओर चले। कुछ देर तक तो हिन्दू लोग अवाक्से खड़े रहे। फिर, परमहंसजीको मधुकरीमें मांसकी सूचना देनेके लिये, जल्दी-जल्दी, उनके आश्रमकी ओर बढ़े। जबतक वे वहाँ पहुंचे तबतक परमहंसजी नदी तट पर पहुंच गये थे। अभी वे मधुकरी को जलमें डुबोकर पवित्र कर ही रहे थे कि हिन्दुओं ने आवाज़ दी—

"महाराज, उस सामग्रीको ग्रहण न कीजियेगा।"

"क्यों भाई? इसमें क्या है?"

"उस म्लेच्छने इसमें न जाने किस जीवका मांस दे दिया है। स्वामिन्, आप मुसलमानोंके दरवाज़े पर मधुकरी मांगने क्यों जाते हैं? वे विधर्मी आपका अपमान करते हैं।"

हसते-हँसते परमहंसजीने उत्तर दिया—"हमारे लिये हिन्दू-मुसलमान दो नहीं हो सकते। मान, अपमान दोनों मेरी दृष्टिमें बराबर हैं। और तुम्हारा यह

कथन कि, मधुकरीमें कोई अपवित्र पदार्थ भी है, केवल भ्रम है। परमहंसोंकी मधुकरीके पास अपवित्रता आही नहीं सकता।"

इसके बाद परमहंसजीने, प्रभुका स्मरण कर, झोलीका आवरण हटाया। उस समय लोगोंने साश्चर्य देखा कि मधुकरीमें चावल, दाल, और रोटियोंको छोड़ गोश्तका एक टुकड़ा भी न था। इस घटनासे परमहंसजी पर हिन्दुओंकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

परमहंसजाको अलीअहमदख़ाँ के पिता भी बहुत मानते थ। उन्होंने उनसे कई बार यह कहा था कि—"अगर आपकी इजाज़त हो तो मैं एक छोटी-सी पत्थरकी कुटी आपके लिये इस पलाशवनमें बनवा दूं।" मगर परमहंसजी खुदायारख़ाँ की बातोंको हंसीमें ही टाल देते थे—"खुदायार, हम लोग बादशाह हैं। हमारे लिये दोही स्थान हो सकते हैं—महल या फूसकी झोपड़ी। हमारी बादशाहीमें खलल न डालो।"

३

पहले परमहंसजी चातुर्मास व्यतीत करनेके लिये हर साल विन्ध्याचल पर चले जाया करते थे। मगर, इधर दो बर्षोंसे उन्होंने वसा करना बन्द कर दिया है। इसका एक बड़ा सुन्दर कारण है। गत वष, कार्तिक मासके आरम्भमें जब वह पहाड़से नीचे, आश्रम पर, आये तब अपने साथ एक श्यामा और सुन्दरी गऊ भी लेते आये थे। उन्होंने हम लोगोंको उस गायका विचित्र इतिहास सुनाया। उनका ख़याल था कि वह किसी पार्वतीय ग्रामके गृहस्थकी गऊ थी। चरवाहेकी असावधानीसे पहाड़ोंमें भटकी-भटकी फिर रही थी। एक दिन परमहंसजी गुफामें बैठे प्रभुचिन्तन कर रहे थे कि, उसी गऊकी चिल्लाहट सुनायी पड़ी। वह आवाज़की ओर बढ़े। कुछ दूर जानेपर उन्होंने देखा; एक भयानक चीता भय-कातर गऊको अपनी पीठ पर लादे लिये जा रहा था और वह प्राण छोड़कर चिल्ला रही थी। उसकी चिल्ला-

हटसे, पर्वतराजके अंगपर रोम-राजिसे खड़े, वृक्ष-समूह कांप रहे थे। स्वयं पर्वतराज विन्ध्य भी, अपनी पूर्ण शक्तिसे प्रतिध्वनि कर, गो-गुहार चारों ओर फैला रहे थे। परमहंसजी अभागिनी गऊकी भयावनी अवस्था देख विचलित हो उठे—अपनेको न सँभाल सके! तुरन्त एक शिला खण्ड उठाकर उन्होंने चीताके पैरोंको ताक कर मारा। निशाना सच्चा बैठा। इस अचानक और भयानक आक्रमणसे वह व्यग्र हो उठा और गऊको जहाँ-का-तहाँ छोड़ भाग खड़ा हुआ।

परमहंसजीने देखा, गऊके अनेक अङ्ग चीतेके आघातसे रक्त-रञ्जित हो गये थे। वह मृत-प्राय पड़ी थी। परमहंसजी वनकी औषधियोंके पूर्ण ज्ञाता हैं। तुरन्त कई प्रकारकी जड़ी-बूटी लाकर उन्होंने उसके क्षत पर लगाया, वह बच गयी। बच जानेके बाद फिर उस गऊने परमहंसजीका साथ न छोड़ा। वह उनके पीछे पालतू कुत्तेकी तरह घूमा करती और सायं-प्रातः चुपचाप अपना "थन" उनके सामने कर खड़ी

हो जाती। परमहंसजी उस मूक पशुकी इस कृतज्ञ-प्रकृति पर मुग्ध हो गये। चीतेके हाथसे उस गऊको पाकर वह उतने ही प्रसन्न हुए जितने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ अपनी नन्दिनीको राजा विश्वामित्रके हाथसे पाकर हुए थे। परमहंसजी उसे नन्दिनी—कामधेनु—समझते थे। उसका दूध—हमने स्वयं एक दिन परमहंसजीसे प्रसाद-स्वरूप प्राप्तकर चखा था—बहुत गाढ़ा और बहुत मीठा होता था। उसके इसी गुण पर मुग्ध हो दयालु परमहंसने उसका नाम रखा था—"सुधा!"

भाई भाईको, मित्र मित्रको, पिता पुत्रको जितना प्यार नहीं कर सकता उतना हमारे परमहंसजी सुधाको प्यार करते थे। नित्य प्रातः काल उसे सावित्रीमें खूब मल-मलकर नहलाते, स्वयं उसके चारेका प्रबन्ध करते और उसका मुँह ताका करते थे। सुधा भी परमहंसजी पर वैसीही मुग्ध थी जैसी माँ अपने बच्चे पर हुआ करती हैं। परमहंसजीके इशारोंको, उनकी भाषाको, मनुष्योंकी तरह समझ लेती। वह

कहते—"सुधे ! चलो, सावित्री तटपर चलें।" सुधा उनके पीछे हो लेती। वह कहते—"सुधे! वृक्षके नीचे बैठकर आश्रम देखो, मैं मधुकरी माँगकर आता" सुधा चुपचाप, सिर नीचा किये, आमके पेड़ की छायामें जा बैठती। जानेके पूर्व गऊकी ओर देख परमहंसजी कहते—"सुधे, जाता हूँ," सुधा गर्दन ऊँचीकर कोमल हुंकार करने लगती। मानो कहती—अच्छा जाओ," उसकी आँखें—बड़ी-बड़ी, काली-काली, करुण आंखें—कहतीं,—"मगर जल्द आना, मैं तुम्हारी राह देख रही हूं।"

जबसे सुधासे भेट हुई; संसार विरागी परमहंस, गृहस्थ हो गये। उनके सदाके निश्चिन्त हृदयमें सुधाके हृदयकी, चारेकी और सुखोंकी चिन्ता बसने लगी। उनके हृदयका वह प्रेम जो अब तक संसार और केवल संसारकी सम्पत्ति था, अब पहले सुधाकी और फिर संसारकी सम्पत्ति हो गया!

परमहंसजीके चातुर्मासमें विन्ध्याचल पर न जाने का "सुन्दर कारण" थी सुधा!

४

गत वर्ष, वसन्त ऋतुके आरम्भमें, सुधाको एक बच्चा हुआ। बड़ा हृष्ट-पुष्ट, बड़ा सुन्दर, लाल रंगका बछड़ा था। बच्चेकी प्राप्तिसे माता-सुधाकी प्रसन्नता देख परमहंसजीका हृदय प्रेम-गद्गद् हो उठा। अब परमहंसजीकी सेवा ग्रहण करनेके लिये दो सुन्दर जीव हो गये। सुधा और उसका बच्चा। सुधाके प्रेमके भी दो हक़दार हो गये—परमहंस और बछड़ा। प्रातःकाल जब परमहंसजो घुटने तक जलमें खड़े हो बछड़ेको नहलाते उस समय सुधा अपनी जीभसे अपने कृपालु-रक्षककी पीठ साफ़ करती!

मगर यह सुख अधिक स्थायी न रह सका। एक दिन मधुकरी माँगकर लौटने पर परमहंसजीने देखा सुधा रो रही थी। उन्होंने उसकी ओर जिज्ञासा भरी दृष्टिसे देखते हुए पूछा—"क्या है सुधे! तुम्हारी आखोंमें आँसू क्यों है?" गऊ ज़ोरसे हुंकार करती हुई आमके पेड़की ओर देखने लगी। परमहंसने

देखा वृक्षके नीचे सुधाका बच्चा बेहोश पड़ा था। वह दौड़े हुए उसके पास गये। मगर व्यर्थ। वहाँ सारा खेल ख़त्म हो चुका था। ध्यानसे देखनेसे पता चला कि बछड़ेकी जीभमें किसी विषैले जानवरने काट लिया था जिसके कारण उसके प्राण पखेरू उड़ गये थे। लाचार, गऊकी पीठपर हाथ फेरते-फेरते परमहंसजीने कहा—"अब बहुत देर हो गयी, सुधे! बात हमारे हाथसे बाहर हो गयी।"

परमहंसजीने बछड़ेको जङ्गलके एक कोनेमें, सरिता सवित्रीके तटपर गाड़ दिया। जिस समय बछड़ा गाड़ा जा रहा था, सुधा पास ही खड़ी थी। उसकी आंखोंके सामने ही उसके रक्षकने उसके बच्चेको माता बसुन्धराके सूखे अञ्चलमें ढक दिया! यह सब वत्स-विरह-विदग्धा गऊमाताकी समझमें कुछ भी न आया। जब परमहंसजी चलने लगे तो वह वहीं अड़ गयी। पृथ्वीकी ओर देखकर चिल्लाने और आँसू बहाने लगी। माताके कोमल हृदयका वह करुण क्रन्दन सुनकर परमहंसजीका हृदय टूक-टूक होने लगा!

दो दिनोंतक गऊने एक तृण भी न छुआ। परमहंसजी भी भूखे ही रहे। तीसरे दिन सावित्री स्नानसे लौटने पर सुधाने कुछ खाया। उसको खिला-पिलाकर परमहंसजी मधुकरी माँगनेके लिये, हमारे गाँवसे पूर्व, एक दूसरे गाँवकी ओर गये। सुधा उसी रसाल वृक्षके नीचे बैठ पागुर करने लगी।

पागुर करते-करते, न जाने क्या सोचकर, गऊ उठ खड़ी हुई और इधर उधर चारों ओर ताक-ताककर "बें बें" चिल्लाने लगी। मानों उसे अपने बछड़ेकी याद आगयी और वह उसके लिये विकल होकर पुकारने लगी। कई बार हुंकारने और "बें बें" करनेपर भी जब कहींसे कोई उत्तर न मिला तब वह उसी प्रकार चिल्लाती आश्रमसे हमारे गाँवकी ओर बढ़ी।

गो-धूलिके समय पूँछ उठाकर, उछलती-कूदती, आँखोंसे आँसू बहाती और "बें बें" करती सुधा हमारे गाँवमें घुसी।

५

"सुबहके गये गये अब लौट रहे हो? इतनी देर तक ज़मीन्दार साहबके घर पर क्या कर रहे थे? नहाने-खानेकी फ़िक्र भी न की।"

"मैं क्या करता? लाचारी थी। गाँवमें बहुत बड़ा झगड़ा हुआ चाहता है।"

"किससे झगड़ा हुआ चाहता है?—क्यों हुआ चाहता है?"

"हिन्दू-मुसलमानोंमें, बाजेके सवाल पर। आज रातमें ठाकुर करनसिंहकी लड़कीकी शादी है। साढ़े चार बजे गाँवमें बारात आयेगी। ज़मीन्दारने उनके यहाँ कहला दिया था कि बारातमें शामको मसजिदके सामने बाजा न बजे। मगर, ठाकुर साहब इसे माननेको तैयार नहीं। दोनों ओरसे अड़ा-अड़ी हो गयी है।"

"वाहरी दुनिया," माथा पीटते हुए इसहाककी बीबीने कहा—"ऐसा तो मैंने नवाबीमें भी नहीं सुना

था। धरमके नामपर किसीकी ब्याह-शादी रोक दी जायगी? आजसे पहले भी हमेशा और हरवक्त मसजिदके सामने बाजे बजे हैं। यह तो झगड़ा ख़रीदना है।"

"यही बातें मैंने भी आज मुसलमानोंकी पञ्चायतमें कही थी, जिसपर, यहाँके बहुतसे मुसलमान मेरे ऊपर बुरी तरह नाराज़ हो गये। खुद अली अहमदख़ाँ उबल पड़े थे। कहने लगे—'जान पड़ता है तुम दीनसे बढ़कर काफ़िरोंको समझते हो। जो मुसलमान मज़हबके नामपर मरनेसे डरे वह मुसलमान नहीं कुछ और है।"

"किसीको कमज़ोर समझकर उससे लड़ाई मोल लेना महज़ब-परस्ती नहीं शैतान-परस्ती है। खुदा-परस्ती नहीं, खुद-परस्ती है। तो क्या सचमुच आज लड़ाई होकर ही रहेगी?"

"मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।"

"तब तुम अभी जाकर परमहंसजीकी गाय उनके सिपुर्द कर आओ। उन्होंने हमारे बच्चे हामिदको

मरनेसे बचाकर हमें हमेशाके लिये क़र्ज़दार और गुलाम बना लिया है। इस गायपर उनकी मुहब्बत है। यहाँके झगड़ेसे अगर परमहंसजीकी गायका कोई नुकसान हुआ तो हम लोग खुदाको क्या मुंह दिखायेंगे?"

"ठीक कहती हो। मैं अभी जाता हूं। आज उसने कुछ खाया है या कल शामकी तरह भूखी हो बधी है?"

"घास, भुस, दाने सब उसके आगे डालकर थक गयी कुछ खाती ही नहीं। बड़ी हठीला गाय है। परमहंसजी—हिन्दू होकर भी—हमारे घरकी पकी रोटियाँ तक खा लेते हैं; मगर, यह जानवर उनसे भी बढ़ी हुई है।"

*　　　*　　　*　　　*

सुधाको बाँधकर, रस्सी हाथमें लिये, मुहम्मद इसहाक़ घरसे बाहर निकला। उस समय सन्ध्या पाँच बजेका वक़्त रहा होगा। अभी वह थोड़ी ही दूर गया होगा कि डण्डे, भाले और तलवारोंसे सजा मुसल-

मानोंका एक दल मिला। वह दल उस मसजिदकी ओर जा रहा था जो इसहाक़के रास्तेमें पड़ती थी।

"आदाब अर्ज़ है मियाँ इसहाक़! तुम्हारी यह सूझ दाद देने लायक़ है। इसे मसजिदमें कुर्बान करनेके लिये ले चल रहे हो न? बड़ा अच्छा इरादा है। साले काफ़िर इन्हीं तरकीबोंसे मानते हैं।"

तीन-चार मुसलमानोंने एक साथ ही इसहाक़से उपरोक्त बातें कह गायकी रस्सी पकड़ ली।

"ठहरो!" डाँटकर इसहाक़ने कहा—"हर वक़्तका मज़ाक ठीक नहीं। राह छोड़ो! शाम हो रही है, मुझे दूर जाना है।"

"हा हा हा हा!" अट्टहास करता हुआ एक हट्टा-कट्टा मुसलमान बोला—"दूर कहाँ जाना है? हम लोग तो तुम्हें मुफ़्तमें सवाब दिला रहे हैं और तुम लाल-पीली आंखें दिखाते हो। चलो, जल्दी करो। और लोग मसजिदमें जुट गये होंगे। अभी दीनके लिये काफ़िरोंसे लड़ना है।"

"तो जाओ न। तुम लोग दीनकी—अगर यही

दीन है—इज़्ज़त बढ़ाओ। मैं इस गायको परमहंसजीके आसरम पर पहुंचाने जाता हूं।"

"यह उस ढोंगी परमहंसकी गाय है, तब तो इसकी कुर्बानीसे दूना सबाब हासिल होगा। पागलों-की तरह बातें न करो। इसे मसजिदमें ले चलो।"

"ऐसा हर्गिज़ नहीं हो सकता। मैं परमहंसजीके एसहानोंका क़र्ज़दार हूं, मुझसे ऐसा नापाक काम कभी नहीं होने का।"

"दीनके लिये भी नहीं...?"

"मैंने हज़ार बार कहा है, यह दानदारी नहीं—बदमाशी है।"

खुदाके लिये भी नहीं?"

"चुप रहो! पाक परवरदिगारका नाम ऐसे वक्त पर न लो। अपने दिलोंका बुख़ार निकालना है तो निकाल लो। खुदाको क्यों बदनाम करते हो?"

"हम तुमसे बहस नहीं करना चाहते। इस गायकी कुर्बानी आज ज़रूर, और ज़रूर होगी।"

"बातें न बढ़ाओ!"

"अरे चलो ! बड़े हिन्दुओंके हिमायती बने हो।"

इतना कह एक मुसलमानने, गायकी पीठ पर, कसकर एक घूंसा जमाया। वह घबराकर चमक उठी। इसहाक़की आँखोंमें ख़ून उतर आया। एक हाथसे गायकी रस्सी मज़बूतीसे पकड़ दूसरे हाथसे, सुधा पर प्रहार करने वाले मुसलमानको धकेलते हुए उसने कहा—

"ख़बरदार ! ज़बरदस्ती करने पर न उतारू होना। मेरे जीते जी तुम इसका बाल भी नहीं बांका कर सकते। ऐसे वक्त पर मैं तुम्हारे ख़ुदा, दीन और इसलामको भूलकर जान पर खेल जाऊंगा।"

छाती ऊँची किये, गायको आगे कर, इसहाक़ आगे बढ़ा। उसके पीछे शस्त्र सुसज्जित मुसलमानोंका दल था। ऐसा मालूम पड़ता था कि उस समयकी भीषण परिस्थितिका कुछ-कुछ अनुभव सुधा भी कर रही थी। वह रह-रहकर इसहाक़ और मुसलमानोंके दलकी ओर देख-देखकर भड़क उठती थी।

६

मधुकरी मांगकर लौटने पर परमहंसकी अभ्यस्त-दृष्टि पहले रसाल वृक्षके नीचे गयी। पर, वहाँ वह चीज़ नहीं थी जिसे उनकी आँखें खोज रही थीं। उन्होंने आवाज़ दी—

"सुधे!"

आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ था। परमहंसजी की आहट पाते ही सुधा पूँछ उठाकर, हुंकार करती हुई, उनके पास दौड़ी आती थी। वह है कहाँ? कुटीके द्वारकी ओर जाते-जाते परमहंसजीने पुनः पुकारा—"सुधे! कहाँ हो? मैं आ गया।"

कुटीके भीतर, बाहर, इधर-उधर सुधाकी आहट न पा परमहंसजीका सहज दयालु-हृदय विचलित हो उठा। दो दिनोंके भूखे विरागीने मधुकरीको कुटीके एक कोनेमें रख सुधाको ढूंढ़ना आरम्भ किया। जङ्गलका कोना-कोना परमहंसके व्यथित कण्ठके "सुधे! सुधे!" से मुखरित हो उठा। पर सुधाकी

सजल आँखों और करुण-मूर्तिका पता न चला। पलाशवन भयानक शान्तिकी गोदमें सोनेकी तैयारी करने लगा। सावित्रीकी कलकल-रागिनी अधिक स्पष्ट हो कर वनस्थली और विन्ध्याचलके अञ्चलमें गूंजने लगी। पर, परमहंसको उसकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं, वह अपनी सुधाको खोज रहे थे।

रात्रिके नौ बजेके कराब सावित्रीके तटपर उनके मनमें यह विचार उठा कि, हो-न-हो सुधा नदी पार कर पर्वतकी ओर चली गयी हो। पर्वतकी ओर ? वहीं जहाँ एक दिन उसके प्राण जाते-जाते बचे थे ! अभागिनी सुधा अभागिनी सुधा !

ऊपरसे हँसते हुए चन्द्रदेवने देखा, नीचे कल-कल-मयी सावित्रीने अनुभव किया, व्यथित हृदय परमहंस नदी पार कर रहे थे। पार कर रहे थे उस चन्द्र-धवल रजनीमें, युगोंसे दण्डायमान विन्ध्याके अञ्चलमें, सुधाको खोजनेके लिये।

रात्रिभर और दूसरे दिनकी दोपहरतक जब

उसका पता न चला तब उदास-मुख, व्यथित-हृदय, श्रान्त-कलेवर परमहंस आश्रमकी ओर लौटे। उनके का काषाय वस्त्र कटीले-वृक्षोंसे उलझ-उलझकर छिन्न-भिन्न हो गया था। उनके कोमल चरण छालोंसे भरे और रक्तरञ्जित थे!

उन्होंने दूरहीसे देखा, आश्रमपर तीन-चार ग्राम-वासी उसकी राह देख रहे थे। पास पहुंचनेपर उन्होंने कहा—

"महाराज, जल्दी कीजिये। आपकी गऊ हमारे गाँवके मुसलमानोंके हाथोंमें पड़ गयी है, गाँवमें दङ्गा होने ही वाला है। वे मुसलमान सुधाकी कुर्बानी...।"

कौन पूरी बात सुनता है? सुधाके प्राण सङ्कटमें हैं यह सुनते ही परमहंस अपनी पूरी शक्तिसे गाँवकी ओर दौड़े। पैर असावधानीसे पड़नेके कारण वह एक स्थानपर बड़े ज़ोरसे गिरे। घुटने फूट गये; मगर, उधर उनका ध्यान था ही नहीं। उनकी सुधा सङ्कटमें थी!

७

बरात मसजिदकी उस ओर खड़ी थी, बाजे बज रहे थे। मुसलमानोंसे घिरी सुधा बीचमें, मसजिद्के सामने थी, अभीतक उसकी रस्सी इसहाक़हीके हाथमें थी।

अली अहमदने ललकार कर कहा—

"बाजा बन्द करो, नहीं तो हम लोग गायकी कुर्बानी करेंगे।"

बारातके नेताने उत्तर दिया—

"यह धमकी फिज़ूल है। हम बाजे किसी तरह बन्द करने पर राज़ी नहीं। अगर हमारा दिल दुखानेके लिये तुम लोग गो-मातापर हाथ छोड़ोगे तो ख़ून हो जायगा।"

इसहाक़ने गर्जकर कहा—"जबतक मुझे न मार लोगे गायको भी न मार सकोगे।"

"तुम इस बीचमें न पड़ो इसहाक़, हम लोग उसे ज़रूर मारेंगे।"

"मैं कहता हूं, यह ग़ैर-मुमकिन है। पहले मुझे फिर गायको मारना होगा।"

अली अहमद्ने तमक कर अपने साथियोंसे कहा—

"इस बे-ईमान मुसलमानको यहाँसे दूर हटाओ। गायकी रस्सी अपने हाथमें लो।"

क मुसलमान गाय और इसहाक़पर टूटे। देखते-देखते उसके हाथसे रस्सी छीन ली गयी; मगर, हाथसे रस्सी छिनते ही इसहाक़ पागल हो गया। झपटकर पासके एक मुसलमानके हाथसे तलवार छीन, उसे ज़ोरोंसे घुमाता हुआ, वह गायको ओर बढ़ा। अली अहमद्ने फिर आवाज़ दी—

"इसहाक़! आगे न बढ़ना, नहीं तो फ़ौरन इस गायकी गर्दन काट ली जायगी। ख़बरदार!"

मगर, इसहाक़ न रुका। एक मुसलमानके विरुद्ध सैकड़ों मुसलमानोंकी तलवारें और डण्डे उठ गये। प्राण छोड़कर गाय इसहाक़की ओर बढ़ी, प्राण छोड़-कर इसहाक़ गायकी ओर बढ़ा। तलवारें झनझना उठीं। दूसरे क्षणमें बारातके हिन्दुओंने देखा गाय

और इसहाक़ दो-दो होकर तड़प रहे थे। मसजिद्के सामनेकी ज़मीन ख़ूनसे नहा उठी थी !!

बारातके नेताने आज्ञा दी—"दूल्हेकी सवारी लौटा ले जाओ, गो-हत्या हो गयी है, अब युद्ध होगा। बद्‌ला लिया जायगा।"

मुसलमानोंने बारात पर ईंट-पत्थर बरसाना शुरू कर दिया। हिन्दू भी टूट पड़े; मगर, सब नहीं। बहुतसे चालाक जीव दूल्हेकी सवारीके साथ पीछे लौट गये।

अभी युद्धका आरम्भ ही था कि, हिन्दुओंका दल चीरता हुआ एक गोरा, वृद्ध और असाधारण लम्बा पुरुष दोनों दलोंके बीचमें आकर खड़ा हो गया। उसने दोनों दलोंको ललकार कर कहा—

"ठहरो! ठहरो !!"

अली अहमद और उसके साथही उसके दलके अनेक मुसलमानोंने परमहंसजीको पहचाना। उनमें एक नहीं अनेक उनके उपकारोंके ऋणी भी थे। फिर उस समय उनकी आंखोंमें कुछ ऐसी ज्योति थी

जिसका सामना दानवता नहीं कर सकती थी। दोनों दल क्षणभरके लिये शान्त हो गये।

उसी समय परमहंसकी चञ्चल दृष्टि मृत-गऊ और इसहाक़पर पड़ी! उस समय भी सुधाका रुण्ड-मुण्ड तड़प रहा था, इसहाक़की देहके टुकड़े नाच रहे थे! परमहंसने झपट कर गऊका मस्तक अपने हाथमें उठा लिया। सुधाकी करुणामयी आंखें खुली थीं, उसके मुखपर आंसुओंकी धाराकी भींगी रेखा अभी ताज़ी थी। सुधाकी यह दुर्दशा देख, उनकी आंखें अंगारे बरसाने लगीं।

"दुष्टो! यह तुमने क्या किया? यह कैसा धर्म-प्रेम है, अनबोलते-पशु और ईश्वरकी पवित्र थाती, मनुष्यकी हत्यासे प्रसन्न होनेवाले राक्षस! तुम्हीं नरकके अधिकारी हो, तुम्हीं शैतान हो, तुम्हीं विश्व-प्रेमके पथके कण्टक हो।

"याद रखो, मैं तुम्हें बद-दुआ देता हूं, शाप देता हूं। यदि ईश्वर या खुदा सच्चा है तो तुम्हारा नाश हो जायगा और जल्द ही तुम्हारे इस नकली मज-

इबका लोप हो जायगा। तुम नहीं देख सकते, अन्ध हो। मैं देख रहा हूं। वह देखो! ख़ूनका तूफ़ान आ रहा है। उसीमें पापको पुण्य, अधर्मको धर्म समझने वाले राक्षसों—हिन्दुओं और मुसलमानों—का अस्तित्व डूब जायगा। मैं जाता हूं। तुम लोग नाचो, कूदो और ख़ूनकी होली खेलो!

*　　*　　*　　*

ईश्वरकी इच्छा, उसी रातको हमारे गाँवमें भयानक आंधी आयी और आयी अपने साथ आगकी एक चिनगारी लेकर! देखते-देखते सारा-का-सारा गाँव जलकर ख़ाक हो गया। निरपराध और अपराधी दोनोंही गृह-हीन, अन्न-हीन और वस्त्र-हीन हो गये! जौके साथ घुन भी पिस गये!!

कुटाराम



हमारे कस्बेके इनायत अली कलतक नौमुसलिम थे। उनका परिवार केवल सात वर्षों से खुदाके आगे घुटने टेक रहा था। इसके पहले उनके सिरपर भी चोटी थी, माथेपर तिलक था और घरमें ठाकुरजी थे। हमारे समाजने उनके निरपराध परिवारको ज़बर-दस्ती मन्दिरसे ढकेलकर मसजिदमें भेज दिया था।

बात यों थी। इनायत अलीके बाप उल्फ़त अली जब हिन्दू थे, देवनन्दन प्रसाद थे, तब उनसे अनजानेमें

एक अपराध बन पड़ा था। एक दिन एक दुखिया ग़रीब युवतीने उनके घर आकर आश्रय माँगा। पता-ठिकाना पूछनेपर उसने एक गांवका नाम ले लिया। कहा—

"मैं बिलकुल अनाथ हूं। मेरे मालिकको गुज़रे छः महीनेसे ऊपर हो गये। जबतक वह थे, मुझे कोई फ़िक्र न थी। ज़मीन्दारकी नौकरीसे चार पैसे पैदा करके, वही हमारी दुनियां चलाते थे। उनके वक्त ग़रीब होने पर भी मैं किसी की चाकरी नहीं करती थी। अब उनके बाद, उसी गांवमें, पेटके लिये परदा छोड़ते मुझे शर्म मालूम होने लगी। इसीलिये उस गांवको छोड़ इस शहरमें नौकरी तलाश रही हूं। मुझे और कुछ नहीं, चार रोटियां और चार गज़ कपड़ेकी ज़रूरत है। आपको भगवानने चार पैसे दिये हैं। मेरी हालतपर रहम कीजिये। मुझे अपने घरके एक कोनेमें रहने और बाक़ी ज़िन्दगी ईश्वरका नाम लेनेमें बिताने दीजिये। आपका भला होगा।"

जात पूछनेपर उसने अपनेको अहीरन बताया।

देवनन्दन प्रसादजी सरल हृदयके थे। स्त्रीकी हालत-पर दया आ गयी। उनकी स्त्रीने भी अहीरनकी मदद ही की। कहा—

"रख लो न। चौका बर्तन किया करेगी, पानी भरेगी, दो रोटी खायगी और पड़ी रहेगी।"

अहीरन रख ली गयी। दो महीनों तक वह घरका काम-काज संभालती रही। इसके बाद एक दिन एकाएक वज्रपात हुआ। न जाने कहाँसे ढूंढ़ता-ढांढ़ता एक आदमी देवनन्दनजीके यहां आया और पूछने लगा—

"बाबूजी, आपने कोई नयी मज़दूरन रखी है?"

"क्यों भाई? तुम्हारे इस सवालका क्या मतलब है?"

"बाबूजी, दो महीनोंसे मेरी औरत ला-पता है। मैं उसीकी तलाशमें चारों ओरकी ख़ाक छान रहा हूं। ज़रासी बातपर लड़कर भाग खड़ी हुई। औरतकी ज़ात अपने हठके आगे मर्दकी इज़्ज़तको कुछ समझती ही नहीं।"

इसी समय हाथमें घड़ा और रस्सी लिये वह अहीरन घरसे बाहर निकली। उसे देखते ही वह पुरुष झपटकर उसके पास पहुंचा—

"अरे; फ़िरोज़ी! यह क्या? किसके लिये पानी भरने जा रही है।"

"इधर आओ जी!" ज़रा कड़े होकर देवनन्दनजीने कहा। "यह कैसा पागलपन है? तुम किसे फ़िरोज़ी कह रहे हो? वह हमारी मज़दूरिन है। हमारे लिये पानी भरने जा रही है। उसका नाम फिरोज़ो नहीं रुकमिनियाँ है। किसी ग़ैर औरतका इस तरह अपमान करते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

जोशमें देवनन्दनजी इतना कह तो गये; मगर, रुकमिनियाँके चेहरेपर नज़र पड़ते ही उनके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उस पुरुषको देखते ही अहीरन रुकमिनियांका मुंह काला पड़ गया। वह काठ-मारी-सी जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी।

रुकमिनियांको फ़िरोज़ी कहनेवालेने देवनन्दनकी ओर देखकर कहा—

"बाबूजी; आपने धोका खाया। यह हिन्दू नहीं, मुसलमान है। रुकमिनियां नहीं, मेरी भागी हुई बीबी फ़िरोज़ी है।"

देवनन्दनके, काटो तो खून नहीं!

२

शामको, घरके सरदारोंके घूमने-फिरने, मिलने-जुलनेके लिये निकल [जानेके बाद; मुहल्लेकी बूढ़ी औरतें और जवान लड़कियाँ अपने-अपने दरवाज़ोंपर बैठकर ज़ोर-ज़ोरसे देवनन्दन और फ़िरोज़ीकी चर्चा करने लगीं।

"बाबारे बाबा!" एक बूढ़ीने राग अलापा-"औरतका ऐसा दीदा! मर्दको छोड़कर दूसरे देश और दूसरेके घरपर चली आयी!"

"मू-झौंसी थी तो तुर्किन और बन गयी अहीरिन। मुसलमान औरतोंमें लाज नहीं होती, मां। तभी तो वह इस तरह अपने मालिकको छोड़कर दूसरेके यहाँ चली आयी। मुझे तो घरके भी बारह जानेमें डर मालूम

होता है। निगोड़ी औरत क्या थी, पतुरिया थी।" एक विवाहिता लड़कीने कहा।

सामनेके दरवाज़ेपरसे दूसरी अधेड़ औरतने कहा—

"अब देखो रघुनन्दनके बापका क्या होता है। दो महीनों तक तुर्किनके हाथ का पानी पीकर और उससे चौका-बर्तन करा कर उन्होंने अपना धरम खो दिया है। हमारे...तो कह रहे थे कि अब उनके घरसे कोई नाता न रखा जायगा।"

"नाता कैसे रखा जा सकता है?" पहली बूढ़ीने कहा "धरम तो कच्चा सूत होता है। ज़रा-सा इधर-उधर होते ही टूट जाता है। फिर हमारा हिन्दूका धरम। राम, राम! जिसको छूना मना है, सुबह जिसका मुंह देखना पाप है, उसके हाथसे देवनन्दनने जल ग्रहण किया। डूब गया—देवनन्दनका ख़ान्दान डूब गया। अब उनसे पान-पानीका नाता रख कौन अपना लोक परलोक बिगाड़ेगा?"

विवाहिता लड़की बोली—

"यह बात शहर भरमें फैल गयी होगी। दो-चार आदमी जानते होते तो छिपाते भी। सुबह उस तुर्किनका आदमी चोटी पकड़कर धों-धों पीटता हुआ उसे ले जा रहा था। सबने देखा, सब जान गये।"

बस। दूसरे दिन मुहल्लेके मुखियाने देवनन्दनको बुलाकर कहा—

"देखो भाई, अब तुम अपने लिये किसी दूसरे कुएंसे पानी मंगाया करो।"

"क्यों ?"

"तुम अब हिन्दू नहीं, मुसलमान हो। दो महीने तक मुसलमानिनसे पानी भराने और चौका-बर्तन करानेके बाद भी तुम्हारा हिन्दू रहना असम्भव है।"

"मैंने कुछ जान बूझ कर तो मुसलमानिनके हाथका पानी पिया नहीं। उसने मुझे धोका दिया। इसमें मेरा क्या अपराध हो सकता है ?"

"भैया मेरे, हम हिन्दू हैं। कोई जान-बूझ कर गो-हत्या करनेके लिये गायके गलेमें रस्सी नहीं बाँधता। फिर भी, बंधी हुई गायके मरनेपर बाँधने-

वालेको हत्या लगती है। प्रायश्चित्त करना पड़ता है।"

"यह ठीक है। उसके जानेके बाद ही मैंने तमाम मकान साफ़ कराया—लिपाया-पोताया है। मिट्टीके बर्तन बदलवा दिये हैं। धातुके बर्तनोंको आगसे शुद्ध कर लिया है। इसपर भी और जो कुछ प्रायश्चित्त कराना हो करा लो। मैं कहीं भागा तो जा नहीं रहा हूं।"

प्रायश्चित्तकी चर्चा चलनेपर व्यवस्थाके लिये पुरोहित और पण्डितोंकी पुकार हुई। बस; ब्राह्मणोंने चारो वेद, छःहो शास्त्र, छत्तीसो स्मृति और अट्ठारहो पुराणका मत लेकर यह व्यवस्था दी कि "अब देवनन्दन पूरे म्लेच्छ हो गये। यह किसी तरह भी हिन्दू नहीं हो सकते।"

उधर देवनन्दनकी दुर्दशाका हाल सुनकर मुसलमानोंने बड़ी प्रसन्नतासे अपनी छाती खोल दी। क़स्बेके सभी प्रतिष्ठित और अ-प्रतिष्ठित मुसलमानोंने देवनन्दनको अपनी ओर बड़े प्रेम, बड़े आदरसे खींचा।

"चले आओ ! हम ज़ात-पाँत नहीं, केवल हक़को मानते हैं। इसलाममें मुहब्बत भरी हुई है। खुदा ग़रीबपरवर है। हिन्दुओंकी ठोकर खानेसे अच्छा है कि हमारी आंखोंपर बैठो—मुसलमान हो जाओ !"

लाचार, समाजसे अपमानित, परित्यक्त, पतित देवनन्दन सपरिवार अल्लामियांकी शरणमें चले गये। वह और करते ही क्या ? मनुष्य स्वभावसे ही समाज चाहता है, सहानुभूति चाहता है, प्रेम चाहता है। हिन्दू समाजने इन सब दरवाज़ोंको देवनन्दनके लिये बन्द कर दिया। इतना हो जानेपर उनके लिये मुसलमान होनेके सिवा दूसरा कोई पथ ही नहीं था। देवनन्दन, उल्फ़त अली बन गये और उनका पुत्र रघुनन्दन—इनायत अली।

देवनन्दनकी छातीपर समाजने ऐसा क्रूर धक्का मारा कि धर्मपरिवर्तनके नौ महीने बाद ही वे इस दुनियासे कूच कर गये !

३

जिन दिनोंकी घटना ऊपर लिखी गयी है उन्हें भूतके गर्भमें गये सात वर्ष हो गये। तबसे हमारे क़स्बेकी हालत अब बहुत कुछ बदल-सी गयी है। पहले हमारे यहाँ सामाजिक या राजनीतिक जीवन बिलकुल नहीं था। सभी पेटके धन्धेकी धुनमें व्यस्त थे। उन दिनों हमारी दस हज़ारकी बस्तीमें, क्लब या सोसाइटीके नाते तहसीलका अहाता मात्र था जहाँ नित्य सायंकाल नगरके दस पांच चापलूस धनी तहसीलदारसे हें-हें करनेके लिये या टेनिस खेलनेके लिए एकत्र हुआ करते थे। आर्य समाजका बदनाम नाम तो घर-घर था; मगर, सच्चा आर्य-समाजी एक भी न था। एक सज्जन आगरेके "आर्यमित्र" के ग्राहक थे। वही स्वामी दयानन्दका नाम ले-लेकर कभी-कभी नवयुवकोंके विनोदके साधन बना करते थे। वह बनते तो थे आर्य-समाजी मगर बिलकुल मौखिक। हमें ठीक याद है, वह पुराने समाजकी सभी प्रथा या

कुप्रथाओंको मानते थे। एक बार उनकी स्त्रीने उनसे सत्यनारायणकी कथा सुननेका आग्रह किया और उन्होंने अस्वीकार कर दिया। बस, इसी बातपर आर्य-समाजी पतिके मुखपर सनातनी चण्डी झाड़ू फेरने, कालिख लगाने और चूना करनेको तैयार हो गयी! तीन दिनोंतक मुहल्ले वालोंको नींद हराम हो गयी। विवश होकर "महाशयजी" को स्त्रीके आगे झुकना पड़ा।

मगर, अब क़स्बेका वातावरण बिलकुल परिवर्तित हो गया है। गत असहयोग आन्दोलनके प्रसादसे हमारा क़स्बा भी बहुत कुछ जीवित हो उठा है। अब हमारे यहाँ बाक़ायदा आर्य-समाज भवन है, और हैं उसके मन्त्री, सभापति। एक पुस्तकालय भी है और उसके भी मन्त्री सभापति हैं। हिन्दीके अनेक पत्र और अंग्रेजीके दो-तीन दैनिक आते हैं। सैकड़ों बालक, युवक और वृद्ध अख़बार-जीवी बन गये हैं। ऐसे अख़बार-जीवियोंको संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

उस दिन आर्य-समाजके मन्त्री पण्डित वासुदेव शर्मा समाज भवनमें बैठे कोई उर्दू अख़बार पढ़ रहे थे। भवनके बाहर—बरामदेमें—दो पञ्जाबी "महाशय" पायजामा और कमीज़ पहने सायं-सन्ध्या कर रहे थे, उसी समय एक, दुबला पतला लंबा-सा पुरुष भवनमें आया। उसकी आहट पा शर्माजीने चश्माच्छादित आंखोंसे उसकी ओर देखा। पहचान गये—

"कहो मियां इनायत अली, आज इधर कैसे ?"

"आपहीकी सेवामें कुछ निवेदन करने आया हूं।"

शर्माजीने चश्मा उतार लिया। उसे कुरतेके कोनेसे साफ़ करनेके बाद पुनः नाक पर चढ़ाते-चढ़ाते बोले—

"भाई इनायत, बड़ी शुद्ध हिन्दी बोलते हो ?"

"जी हां शर्माजी, मैं बहुत शुद्ध हिन्दी बोल सकता हूं। इसका कारण यही है कि मेरी नसोंमें बहुत शुद्ध हिन्दू रक्त बह रहा है। समाजने ज़बरदस्ती मेरे पिता-को मुसलमान होनेके लिये विवश किया, नहीं तो आज मैं भी उतना ही हिन्दू होता जितने आप या

कोई भी दूसरा हिन्दुत्वका अभिमानी ! ख़ैर, मुझे आपसे कुछ कहना है...।"

"कहिये, क्या आज्ञा है ?"

"मैं पुनः हिन्दू होना चाहता हूं।"

"हिन्दू होना ??" आश्चर्यसे मुख विस्फारित कर शर्माजीने पूछा।

"जी हाँ। अब मुसलमान रहनेमें लोक परलोक दोनोंका नाश दिखाई पड़ता है। इसलिये नहीं कि उस धर्ममें कोई विशेषता नहीं है, बल्कि इसलिये कि मेरा और मेरे परिवारका हृदय मुसलमान धर्मके योग्य नहीं। अनन्त कालका हिन्दू हृदय—हिन्दू सभ्यताका पक्षपाती शान्त हृदय—मुसलमानी रीति-नीति और सभ्यताका उपभोग करनेमें बिलकुल अयोग्य साबित हुआ है। मेरी स्त्री नित्य प्रातःकाल खुदा-खुदा नहीं, राम-राम जपती है। मैं मुसलमान रहकर क्या करूंगा ? मेरी माता गङ्गा-स्नान और बदरिकाश्रम यात्राके लिये तड़पा करती हैं। मेरा हृदय न तो उन्हें मक्का-मदीनाका भक्त बनानेकी धृष्टता कर सकता है

और न वह बन ही सकती हैं। मैं मुसलमान रहकर क्या करूंगा? मैं स्वयं मसजिदमें जाकर हृदयके मालिकको नहीं याद कर सकता। मेरा हिन्दू हृदय मसजिद्के द्वारपर पहुंचते ही एक विचित्र-स्पन्दन करने लगता है। उस स्पन्दनका अर्थ खुदा या मसजिद वालेके प्रति अनुराग नहीं हो सकता, घृणा भी नहीं हो सकती। वह स्पन्दन अनुराग और घृणाके मध्यका निवासी है। इन्हीं सब कारणोंसे, बहुत सोच समझकर अब मैंने 'शुद्ध' होकर हिन्दू होनेका निश्चय किया हैं।"

पञ्जाबी महाशय भी सन्ध्या समाप्त कर ॐ ॐ करते हुए भीतर आ गये। शर्माजीने इनायत अली उर्फ रघुनन्दनका परिचय देते हुए उनके प्रस्तावपर उन दोनों महाशयोंकी सम्मति मांगी।

"धन्य हो महाशय जी!" एक महाशय बोले— "ऋषि दयानन्दनकी किरपा होगी तो हमारे वे सब बिछड़े भाई एक-न-एक दिन फिर अपने आर्य-धरममें चले आयेंगे। इन्हें ज़रूर शुद्ध कीजिये।

४

हिन्दू मुसलिम वैमनस्यका बाज़ार गर्म होनेके एक महीना पूर्व एक विचित्र पुरुष हमारे क़स्बेमें आये। उनकी अवस्था पचास वर्षोंसे अधिक जान पड़ती थी। वह वस्त्रके नामपर केवल लंगोटी धारण किया करते। वही उनकी सारी गृहस्ती और सम्पत्ति थी। उनका मुख तो रोबीला नहीं था, पर, उसपर विचित्र आकर्षण दिखाई देता था। दाढ़ी फुटभर लम्बी थी। सरके बाल भी बड़े बड़े थे।

उनमें एक ऐसा चमत्कार था जिससे क़स्बेके छोटे-छोटे लड़के उनपर जान दिया करते थे। हाँ, उनका नाम बताना तो भूल ही गया। वह अपनेको "खुदाराम" कहा करते थे। खुदाराम गलीमें आये हैं, यह सुनते ही लड़कोंकी मण्डली जान छोड़ कर उनकी ओर झपट पड़ती। खुदाराम पैसे दो! खुदाराम पैसे दो!" की आवाज़से गली गूँज उठती थी। पहले तो खुदाराम दो-चार बार लड़कोंको मुंह

बिगाड़-बिगाड़कर डरानेकी कोशिश करते, फिर दो-तीन बच्चोंको पीठपर चढ़ाकर, बग़लमें दबाकर या कंधेपर उठाकर भाग खड़े होते। "भागा! भागा! हो हो हो हो! लेना जी!" आदि कहते हुए अन्य लड़के खुदारामको रगेद लेते। अन्तमें लाचार हो वह खड़े हो जाते, बच्चोंको पीठ या कंधेसे नीचे उतार देते और पूछने लगते—

"बन्दरो! क्या चाहिये?"

"पैसे खुदाराम, पैसे!"

खुदाराम बड़े जोरसे हँते-हँसते ख़ाली मुट्ठीको बन्दकर इधर-उधर हाथ चलाने लगते। चारो ओर झन्न-झन्नकी आवाज़ गूंज उठती। लड़के प्रसन्न होकर पैसे लूटने लगते—और खुदाराम नौ-दो-ग्यारह हो जाते।

खुदारामको सबसे अधिक इन लड़कोंने मशहूर किया।

इसके बाद एक घटना और हुई जिससे उनकी शोहरत चौगूनी बढ़ गयी। किसी ग़रीब चमारके

पांच वर्षके पुत्रको हैज़ा हो गया था। उसके पास वैद्य, हकीम या डाक्टर बाबूके लिये पैसे नहीं थे। कई जगह जानेपर भी किसीने उस अभागेकी सुध न ली। उसका लड़का उपचारके अभावसे मरने लगा।

उसी समय उधरसे खुदीराम लड़कोंकी मण्डलीके साथ गुज़रे। चमारकी स्त्रीको दरवाज़ेपर बैठकर रोते देख वह उसके सामने जाकर खड़े हो गये। पूछने लगे—

"क्यों रो रही है?"

स्त्रीने उत्तर तो कुछ न दिया, हां, स्वरको 'पंचम' से 'निषाद' कर दिया।

"क्यों रोती है रे? बोलती क्यों नहीं; तुझे भी पैसे चाहिये?"

"पैसे नहीं" स्त्रीने इस बार हिचकते-हिचकते उत्तर दिया "दवा चाहिये। मेरा लाल हैज़ेसे मर रहा है।"

"तेरे बच्चेको हैज़ा हो गया है? पगली कहींकी।

इतना खाना क्यों खिला दिया ? मुझे तो कभी कुछ खिलाता नहीं। कुछ खिला तो तेरा बच्चा अभी चङ्गा हो जाय।"

"बाबा, मेरे घरमें तुम्हारे खाने लायक है ही क्या ? कहो तो चने खिलाऊँ।"

"ला, ला ! जो कुछ भी हो दौड़कर ले आ ! तेरा बच्चा अभी अच्छा हो जायगा।"

स्त्री अपने मकानमें गयी और एक छोटी सी पोटलीमें पाव-डेढ़-पाव भुने हुए चने ले आयी। खुदारामने पोटली लेकर बालक मण्डलीको चना दान करना आरम्भ किया। देखते-देखते पोटली साफ़ हो गयी। केवल चार-पाँच चने बच रहे। उन्हें स्त्रीके हाथमें देते हुए उन्होंने कहा—

"इन चनोंको पीसकर बच्चेको पिला दे। यह उसका हिस्सा है। ले जा !"

दूसरे दिन उसी चमारिनने क़स्बेभरमें यह बात मशहूर कर दी कि खुदाराम पागल नहीं, होशियार है। मामूली आदमी नहीं, फ़क़ीर है, देवता है।

फिर तो हिन्दू मुसलमान दोनों जातिके लोगोंने—विशेषतः स्त्रियोंने खुदारामको न जाने क्या-क्या बना डाला। कितनोंके बच्चे उनकी ऊटपटांग औषधियोंसे अच्छे हो गये। कितनोंको खुदारामकी कृपासे नौकरी मिल गयी। कितने मुक़दमे जीत गये। क़स्बा-का-क़स्बा उन्हें पूजने लगा।

मगर, खुदाराम ज्यों-के-त्यों रहे। उनका दिन रातका चारों ओर लड़कोंकी मण्डलीके साथ घूमना न रुका। अच्छे-से-अच्छे धनी भी उन्हें कपड़े न पहना सके। किसीके आग्रह करनेपर वह कपड़े—धोती, कुर्ता, टोपी—पहन तो लेते मगर, उसके घरसे आगे बढ़ते ही टोपी किसी लड़केके मस्तक पर होती, धोती किसी ग़रीबके झोपड़ेपर और कुर्ता किसी भिखमंगेके तनपर! किसी-किसी दिन तो दो-दो बजे रातको किसी गलीमें खुदारामकी कण्ठ-ध्वनि सुनाई पड़ती—

तू है मेरा ख़ुदा, मैं हूं तेरा ख़ुदा,
तू ख़ुदा मैं ख़ुदा, फिर जुदाई कहां।

५

सात आदमी आपसमें बातें करते हुए समाज-भवनकी ओर जा रहे थे। उनमें एक तो समाजके मन्त्री महाशय थे, दो हमारे परिचित पञ्जाबी और चार बाहरसे आये हुए दूसरे आर्यसमाजी थे। बातें इस इस प्रकार हो रही थीं—

"मुसलमान लोग भरसक इनायत अलीको हिन्दू न होने देंगे।"

"क्यों न होने देंगे? अजी अब वह ज़माना लद गया; यहाँके सभी हिन्दू हमारे साथ हैं।"

"लड़ाई हो जानेका भय है।"

"अगर इस बातको लेकर कोई लड़े तो लड़े। बे-वक़ूफ़ीका भार लड़ाई छेड़नेवाले पर होगा।"

"अच्छा, हमलोग इनायतके परिवारको केवल शुद्ध करें—वेद भगवानकी सवारी निकालनेसे लाभ?"

कई एक साथ बोल उठे—"वाह! वेद भगवानकी सवारी क्यों न निकालें? हम अपने बिछुड़े भाईको

पायेंगे। ऐसे मौके पर आनन्द-मङ्गल मनानेसे डरें क्यों ?

"सवारीपर" पहले महाशयने कहा—"मुसलमानोंने आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया है। यह मैं सच्ची खबर सुना रहा हूं।"

"देखो भाई, इस तरह दबनेसे काम न चलेगा। हम किसीकी धार्मिक कृतिमें बाधा नहीं देते तो कोई हमारे पथमें रोड़े क्यों डालेगा ? फिर, अगर उन्होंने छेड़ा तो देखा जायगा ! भयके नामपर धर्म कभी न छोड़ा जायगा।"

इसी समय बगलकी एक गलीसे लंगोटी लगाये ख़ुदाराम निकले। वह वही गुनगुना रहे थे—

तू है मेरा ख़ुदा, मैं हूं तेरा ख़ुदा,
तू ख़ुदा मैं ख़ुदा फिर जुदाई कहां।

मन्त्री महाशयने पुकारा—

"ख़ुदाराम !"

"चुप रहो !" ख़ुदारामने कहा—"मैं कोई युक्ति सोच रहा हूं।"

"कैसी युक्ति सोच रहे हो, खुदाराम ? हमें भी तो बताओ।"

"सोच रहा हूं कि क्या उपाय करू कि खुदा-खुदामें लड़ाई न हो। तुम लोग लड़ोगे ?"

"नहीं, लड़नेका विचार नहीं है, पर, सवारी ज़रूर निकलेगी।"

"खाना नहीं खाऊगा, पर, मुंहमें कौर ज़रूर डालूंगा। हा हा हा हा ! यही मतलब है न ?"

"लाचारी है, खुदाराम।"

"तो धर्मके नामपर खूनकी नदी बहेगी ? हा हा हा हा ! तुम लोग इन्सान क्यों हुए ? तुम्हें तो भालू होना चाहिये था, शेर होना चाहिये था, भेड़िया होना चाहिये था। वैसी अवस्थामें तुम्हारी रक्त-पिपासा मज़ेमें शान्त होती। धर्मके नामपर लड़नेवाले इन्सान क्यों होते हैं ?"

अपरिचित आगन्तुक आर्यांने शर्माजीसे पूछा—

"क्या यह पागल है ?"

"हाँ हाँ" खुदारामने कहा—"कुरान नहीं पढ़ा है

इसलिये पागल है, सत्यार्थ प्रकाश नहीं देखा है इसलिये पागल है, धर्मके नाम पर खूंरेज़ी नहीं पसन्द करता इसलिये पागल है, खद्दरका कुरता नहीं पहनता इसलिये पागल है, लेक्चर नहीं दे सकता इसलिये खुदाराम ज़रूर पागल है। हा हा हा हा! खुदाराम पागल है। मुसलमान कहते हैं—'तू पागल है; इस बीचमें न पड़!' हिन्दू भी यही कहते हैं। अच्छी बात है—लड़ो! अगर होशियारीका नाम लड़ना ही है तो लड़ो!"

तू भी इन्सान है, मैं भी इन्सान हूं,
गर सलामत हैं हम, तो .खुदाई कहां।
तू है मेरा .खुदा, मैं हूं तेरा .खुदा,
तू .खुदा मैं .खुदा, फिर जुदाई कहां।

खुदाराम नाचता-कूदता हो-हो-हो करता अपने रास्ते लगा।

६

क़स्बेके हज़ारों हिन्दू मर्द, मसाज-मन्दिरकी ओर,

वेदभगवानके जुलूसमें शामिल होनेके लिये चले गये। मुसलमान पुरुष भी, पुराने पीरकी मसजिदमें, जुलूसमें बाधा डालनेके लिये सशस्त्र एकत्र हो गये। हिन्दू और मुसलमान दोनोंके घरोंपर या तो बूढ़े थे या बच्चे और स्त्रियाँ। घर-घरका दरवाज़ा भीतरसे बन्द था।

एक मुसलमानके दरवाज़ेपर किसीने आवाज़ दी—

"माँ!"

"कौन है?"

"ज़रा बाहर आओ, माँ! मैं हूं खुदाराम।"

दरवाज़ा खोलकर बूढ़ी बाहर निकली।

"क्या है खुदाराम? खाना चाहिये?"

"नहीं माँ. आज एक भीख मांगने आया हूं—देगी न?"

"क्या है फ़क़ीर? तुम्हें क्या कमी है? मांगो, तुमने मेरी बेटीकी जान बचायी है। हम हमेशा तुम्हारे गुलाम रहेंगे। मांगो क्या लोगे?"

"पहले क़सम खा—देगी न?"

"कसम पाक परवरदिगारकी ! खुदाराम, तुम्हारी चीज़ अगर मेरे इमकानमें होगी तो ज़रूर दूंगी।"

"तो, चलो मेरे साथ! हम लोग हिन्दू-मुसलमानोंका झगड़ा रोकें। बच्चोंको भी ले लो। मैं मुहल्ले भरकी—क़स्बे भरकी—औरतों और बच्चोंकी पलटन लेकर दोनों जातियोंके पुरुषोंपर आक्रमण करूंगा, उन्हें खुदा या धर्मके नामपर लड़नेसे रोकूंगा।"

मुसलमान जननी अवाक्‌सी खड़ी रह गयी! खुदाराम कहता क्या है ?

"चुप क्यों हो गयी, माँ? तूने मुझे भीख देनेकी क़सम खायी है। मैं तेरे हितकी बात कहता हूं। इस रक्तपातमें पुरुषोंके नहीं, स्त्रियोंके कलेजेका खून बहाया जाता है। स्त्रियां विधवा होती हैं, माताएं अपने बच्चे खोती हैं, बहिनें अपमानित होती हैं। पुरुषोंकी यह ज्यादती तुम्हीं लोगोंके रोकनेसे रुकेगी। चलो! उन पत्थरोंके आगे रोओ और उन्हें लड़नेसे रोको। उन्हें बताओ कि तुम्हारे शरीर तुम्हारी माताओंकी धरोहर । उनकी इच्छाके विरुद्ध उनका

नाश करनेवाले तुम कौन हो? देर न करो, नहीं तो सब चौपट हो जायगा।"

* * * *

एक ओर उत्तेजित मुसलमान खुदाके नामपर ईंट और डण्डे चलानेपर उतारू थे, दूसरी ओर हिन्दू। वेदभगवानका जुलूस—शुद्ध [इनायतअली] रघुनन्दन-प्रसादके परिवारके साथ और—हज़ारों हिन्दुओंके साथ मसजिदके पास डटा था। युद्ध छिड़ने ही वाला था कि गंगाकी कलकल धाराकी तरह हज़ारों स्त्रियोंकी कण्ठ-ध्वनि, मुसलमान दलके पीछे, सुनाई पड़ी। पहले ख़ुदाराम गाते और उनके बाद स्त्रियां उसी पदको दुहराती थीं—

है मेरा ख़ुदा, मैं हूं तेरा ख़ुदा,
तू ख़ुदा मैं ख़ुदा, फिर जुदाई कहां।

छोटे-छोट बच्चोंके कण्ठकी उस कोमलताके आगे, माताओंके कण्ठकी करुण-धाराके आगे, उत्तेजित युवकोंके हृदयकी राक्षसता मुग्ध होकर, पुलकित होकर और नतमस्तक होकर खड़ी हो गयी! मुसल-

मान दलने स्त्रियोंके इस जलूसके लिये चुपचाप रास्ता दे दिया। हिन्दू दलवाले आँखें फाड़-फाड़कर ख़ुदाराम और उसकी स्वर्गीय सेनाकी ओर देखने लगे। उस सेनामें हरेक हिन्दू और प्रत्येक मुसलमानके घरकी माताएं और बहनें, बेटे और बेटियां थीं।

"तुम लोग यहाँ क्यों आयीं?" मुसलमानोंने पूछा।

"तुम लोग यहाँ क्यों आयीं?" हिन्दुओंने भी प्रतिध्वनिकी तरह मुसलमानोंके प्रश्नको दुहराया। एक मुसलमान बूढ़ी आगे बढ़ी—

"हम आयी हैं तुम्हें मरनेसे बचानेके लिये। तुम हमारे बेटे हो—वे बेटे, जिन्हें हमने रात-रात भर जागकर, भूखों रहकर, दुआ मांगकर अपनी आंखोंको ख़ुश रखनेके लिये, दिलको शाद रखनेके लिये इतना बड़ा किया है। तुम्हारे लिये हम ख़ुदाकी इबादत करती हैं—तुम्हीं हमारे ख़ुदा हो।

"यह क्या हो रहा है? धर्मके नामपर ख़ून बहानेकी क्या ज़रूरत है? तुम्हें यह शरारत किस शैतानने

सिखायी है? बच्चो! तुम्हारी माँएँ तुम्हें खोकर अन्धी हो जायँगी, उनकी ज़िन्दगी ख़राब हो जायगी। बहिश्त पानेपर भी तुम्हें चैन न मिल सकेगा। लड़ो मत! ख़ूनसे चाहे शैतान भले ही ख़ुश हो जाय, पर, ख़ुदा कभी नहीं ख़ुश हो सकता। ख़ुदा अगर ख़ून पसन्द करता, तो, हमारे वज़ू करनेके लिये पानी न बनाकर ख़ून ही बनाता। गंगा ख़ूनी गंगा होती, समन्द्र ख़ूनका समन्द्र होता। ख़ूनके फेरमें न पड़ो, मेरे कलेजो! ख़ुदा ख़ून नहीं पसन्द करता।"

"वेदके पागलो!" ख़ुदारामने हिन्दुओंको ललकारा—"चलो, ले जाओ अपना जुलूस! माताएँ तुम्हें रास्ता देती हैं।"

मुसलमानोंके हाथके शस्त्र नीचे झुक गये। बाजा बजानेवाले बाजा बजाना भूल गये। माताओंने रास्ता बनाया और वेद भगवानकी सवारी—हज़ारों मंत्र-मुग्ध हिन्दुओंके साथ निकल गयी!

सावनके बादलकी तरह मधुर ध्वनिसे ख़ुदाराम

पुनः गरजे, माता वसुन्धराकी तरह माताओंके हृदयसे पुनः प्रतिध्वनि हुई—

तूने मन्दिर बनाया, तू भगवान है,
मैंने मसजिद उठायी, मैं रहमान हूं।
तू भी भगवान है, मैं भी भगवान हूं,
तू .खुदा मैं .खुदा, फिर जुदाई कहां।

इस पवित्र जलूसके नेता थे खुदाराम; उनके पीछे हिन्दू-मुसलमान बच्चे, बच्चोंके पीछे दोनों जातिकी माताएं और सबके पीछे मुसलमान पुरुष—जलूसके सशस्त्र रक्षकोंकी तरह चल रहे थे। प्रकृति पुलकित कलेवरा थी, तारिकाएं खिलखिला रही थीं, चन्द्रमा हँस रहे थे। वह दृश्य पृथ्वीका स्वर्ग था!

बस